आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

तीर्थंकर भगवान महावीर
[२५७७वाँ जन्मदिन—१० अप्रेल]

और उनके अनुयायी
श्री कानजीस्वामी
[९०वाँ जन्मदिन—२८ अप्रेल]

आतम बने परमात्मा,
हो शांति सारे देश में।
है देशना-सर्वोदयी,
महावीर के संदेश में॥

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३४ : अंक १० [४०६] अप्रेल, १९७९

आत्मधर्म [४०६]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल
कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)
शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे
मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ निरखत जिनचन्द्रवदन
२ तीर्थंकर भगवान महावीर और उनके अनुयायी श्री कानजीस्वामी
३ संपादकीय : क्रमबद्धपर्याय
४ सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो [समयसार प्रवचन]
५ क्षायकादिभावस्थान भी जीव नहीं [नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र
१० प्रबंध संपादक की कलम से

जो क्रमबद्धपर्याय को नहीं मानता। वह सचमुच आत्मा के ज्ञानस्वभाव को ही नहीं मानता। क्रमबद्धपर्याय को माने बिना तीन काल का संपूर्ण ज्ञान सिद्ध नहीं होगा अर्थात् केवलज्ञान ही सिद्ध नहीं होता। केवलज्ञान की प्रतीति के बिना ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा नहीं होगी। ज्ञानस्वभाव की श्रद्धा के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होगा और सम्यग्दर्शन के बिना मोक्षमार्ग का सम्यक् पुरुषार्थ नहीं होगा।

— पूज्य स्वामीजी

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३४ [४०६] अंक : १०

निरखत जिनचन्द्रवदन, स्वपद सुरुचि आई॥टेक॥

प्रगटी निज आन की पिछान, ज्ञान-भान की—
कला उद्योत होत, काम यामिनी पलाई॥
॥निरखत जिनचन्द्रवदन०॥

शाश्वत आनंद स्वाद पायो, विनस्यो विषाद।
आन में अनिष्ट-इष्ट, कल्पना नसाई॥
॥निरखत जिनचन्द्रवदन०॥

साधी निज साध की समाधि, मोह व्याधि की—
उपाधि को विराधि कैं, अराधना सुहाई॥
॥निरखत जिनचन्द्रवदन०॥

धन दिन छिन आज सुगुनि, चिंते जिनराज अबै।
सुधरे सब काज 'दौल', अचल सिद्धि पाई॥
॥निरखत जिनचन्द्रवदन०॥

तीर्थंकर भगवान महावीर और उनके अनुयायी श्री कानजी स्वामी

सहज संयोगवश इस वर्ष फिर इस युग के अंतिम और चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर एवं विद्यमान सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी का जन्म-दिवस माह अप्रेल में आया है। १० अप्रेल १९७९ को है महावीर जयंती और २८ अप्रेल १९७९ को है कानजीस्वामी का जन्म-दिवस।

१० अप्रेल, चैत्र शुक्ल १३ के दिन महावीर जयंती सारे भारतवर्ष में बड़े ही उत्साह से मनायी जावेगी। स्वामीजी की जयंती भी भारत के अनेक नगरों में २८ अप्रेल, बैसाख सुदी २ को मनायी जावेगी। उक्त अवसर पर इस वर्ष स्वामीजी बम्बई में बिराजेंगे। वहाँ उनकी जयंती की तैयारियाँ बड़े ही जोर-शोर से हो रही हैं।

वह पवित्र दिन महावीर जयंती का ही था जिस दिन इस युग के महान क्रांतिकारी आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने अपना कुलधर्म स्थानकवासी संप्रदाय एवं उसका गौरवपूर्ण गुरुत्व, मान-प्रतिष्ठा आदि सब कुछ त्याग कर एक सामान्य श्रावक के रूप में दिगंबर धर्म धारण किया था।

तीर्थंकर महावीर ने लगभग २५४६ वर्ष पूर्व घर-बार को तिलांजलि देकर दिगम्बरत्व धारण किया था। उसके लगभग २५०० वर्ष बाद स्वामीजी ने कुलधर्म को तिलांजलि देकर दिगम्बर धर्म धारण किया।

भगवान महावीर पूर्ण वीतरागी-सर्वज्ञ साक्षात् परमात्मा थे। युगांतरकारी अलौकिक दिव्य महापुरुष थे। उन्होंने तत्कालीन युग को प्रभावित ही नहीं किया, वरन् उस युग में एक क्रांतिकारी परिवर्तन प्रस्तुत कर दिया। उसके युगांतरकारी आलोक का प्रभाव आज भी विद्यमान है।

वे युग-युग तक आलोक प्रदान करनेवाले दीप्तिमान दिवाकर थे। स्याद्वाद-वाणी में अनेकांतात्मक वस्तु का जो स्वरूप उनके द्वारा प्रतिपादित हुआ, वह आज भी आत्मार्थियों का पथ आलोकित कर रहा है।

आज से २५३५ वर्ष पहले जो पथ विपुलाचल पर भगवान महावीर ने दिखाया था—उसी पथ के एक पथिक हैं युगपुरुष श्री कानजीस्वामी; जिन्होंने वर्तमान जैन आध्यात्मिक जगत को सर्वाधिक प्रभावित किया है।

वे इस युग के बहुचर्चित महापुरुष हैं। चाहे पक्ष में हो चाहे विपक्ष में, जैन समाज में आज जितनी चर्चा उनके बारे में चलती है; अन्य किसी के बारे में नहीं।

महावीर की वाणी की रहस्योद्घाटक विद्यमान विभूतियों में स्वामीजी एक युगांतरकारी विभूति हैं; जिन्हें अपने बीच पाकर आज जैन-जगत गौरवान्वित है।

८९ वर्ष की उम्र में भी पूर्णतः सजग, अध्ययन, मनन, चिंतन, आत्मानुभवन, प्रवचन एवं तत्त्वचर्चा में नियमितरत युगांतरकारी युगपुरुष आपके ९०वें पावन जन्म-दिवस पर भगवान महावीर की पावन स्मृतिपूर्वक मंगल कामना करता हूँ कि आप शतायु हों एवं भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित मुक्ति का मार्ग सक्रियरूप से दिखाते रहें।

— संपादक

सम्पादकीय

क्रमबद्धपर्याय | एक अनुशीलन

[गतांक से आगे]

इसीप्रकार चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के शास्त्रों में भी सर्वत्र इसकी प्रतिध्वनि देखी जा सकती है। समयसार (आत्मख्याति) व कार्तिकेयानुप्रेक्षा के उद्धरण तो दिये ही जा चुके हैं। प्रवचनसार गाथा १०२ की तत्त्वप्रदीपिका टीका में भी पर्याय के जन्म-क्षण और नाश-क्षण की बात आती है। उससे भी इस बात की पुष्टि होती है।

तथा उसी की गाथा ९९ की टीका में विस्तारक्रम की भाँति प्रवाहक्रम को भी हार का दृष्टांत देकर स्पष्ट किया है, जो इसप्रकार है:—

"जैसे द्रव्य का वास्तु समग्रपने द्वारा (अखंडता द्वारा) एक होने पर भी, विस्तारक्रम में प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं, वे प्रदेश हैं, इसीप्रकार द्रव्य की वृत्ति समग्रपने द्वारा एक होने पर भी, प्रवाहक्रम में प्रवर्तमान उसके जो सूक्ष्म अंश हैं, वे परिणाम हैं। जैसे विस्तारक्रम का कारण प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है; उसीप्रकार प्रवाहक्रम का कारण परिणामों का परस्पर व्यतिरेक है।

जैसे वे प्रदेश अपने स्थान में स्व-रूप से उत्पन्न और पूर्व-रूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एकवास्तुपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं; उसीप्रकार वे परिणाम अपने अवसर में स्व-रूप से उत्पन्न और पूर्व-रूप से विनष्ट होने से तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति से रचित एक प्रवाहपने द्वारा अनुत्पन्न-अविनष्ट होने से उत्पत्ति-संहार-ध्रौव्यात्मक हैं। और जैसे वास्तु का जो छोटे से छोटा अंश पूर्वप्रदेश के विनाशस्वरूप है, वही (अंश) उसके बाद के प्रदेश का उत्पादस्वरूप है तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वास्तुपने द्वारा अनुभयस्वरूप है (अर्थात् दो में से एक भी स्वरूप नहीं है); इसीप्रकार प्रवाह का जो छोटे से छोटा अंश पूर्वपरिणाम के विनाशस्वरूप है, वही उसके

बाद के परिणाम के उत्पादस्वरूप है, तथा वही परस्पर अनुस्यूति से रचित एकप्रवाहपने द्वारा अनुभयस्वरूप है।

इसप्रकार स्वभाव से ही त्रिलक्षण परिणामपद्धति में (परिणामों की परंपरा में) प्रवर्तमान द्रव्य स्वभाव का अतिक्रम नहीं करता, इसलिये सत्त्व को त्रिलक्षण ही अनुमोदना चाहिये—मोतियों के हार की भाँति।

जैसे—जिसने (अमुक) लंबाई ग्रहण की है ऐसे लटकते हुए मोतियों के हार में, अपने-अपने स्थानों में प्रकाशित होते हुए समस्त मोतियों में, पीछे-पीछे के स्थानों में पीछे-पीछे के मोती प्रगट होते हैं इसलिये, और पहले-पहले के मोती प्रगट नहीं होते इसलिये, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति का रचियता सूत्र अवस्थित होने से त्रिलक्षणत्व प्रसिद्धि को प्राप्त होता है; इसीप्रकार जिसने नित्यवृत्ति ग्रहण की है ऐसे रचित (परिणमित) द्रव्य में, अपने-अपने अवसरों में प्रकाशित (प्रगट) होते हुए समस्त परिणामों में पीछे-पीछे के अवसरों पर पीछे-पीछे के परिणाम प्रगट होते हैं इसलिये, और पहले-पहले के परिणाम नहीं प्रगट होते हैं इसलिये, तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचनेवाला प्रवाह अवस्थित होने से त्रिलक्षणपना प्रसिद्धि को प्राप्त होता है।

भावार्थ—जैसे द्रव्य के विस्तार का छोटे-से-छोटा अंश वह प्रदेश है; उसीप्रकार द्रव्य के प्रवाह का छोटे-से-छोटा अंश वह परिणाम है। प्रत्येक परिणाम स्व-काल में अपने रूप से उत्पन्न होता है, पूर्वरूप से नष्ट होता है और सर्व परिणामों में एक प्रवाहपना होने से प्रत्येक परिणाम उत्पाद-विनाश से रहित एकरूप-ध्रुव रहता है और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में समय-भेद नहीं है, तीनों ही एक ही समय में हैं। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणामों की परंपरा में द्रव्य स्वभाव से ही सदा रहता है। इसलिये द्रव्य स्वयं भी, मोतियों के हार की भाँति, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है।''

उक्त प्रकरण में 'सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचित एकप्रवाह' वाक्य जो कि अनेक बार आया है, ध्यान देने योग्य है तथा मोतियों के हार के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि जैसे हार में मोतियों का क्षेत्र अपने क्रम में नियमित है; उसीप्रकार झूलते हुए हार में उनके प्रगटने का काल भी नियमित है। जैसे प्रत्येक द्रव्य में उसके प्रदेश (क्षेत्र) नियमित (निश्चित) हैं; उसीप्रकार उसका कालप्रवाह भी नियमित अर्थात् निश्चित है।

यहाँ क्षेत्र के नियमितक्रम के माध्यम से काल (पर्याय) संबंधी नियमितक्रम को स्पष्ट किया गया है। क्योंकि क्षेत्र संबंधी क्रमनियमितता आसानी से समझी जा सकती है।

जिसप्रकार द्रव्य को संपूर्ण विस्तारक्षेत्ररूप से लक्ष्य में लिया जाये तो उसका संपूर्ण क्षेत्र एक ही है; उसीप्रकार द्रव्य को—तीनों काल के परिणामों को एक साथ लक्ष्य में लेने पर उसका काल त्रैकालिक एक है; फिर भी जिसप्रकार क्षेत्र में एक नियमित प्रदेशक्रम है, उसीप्रकार काल (पर्याय) में भी पर्यायों का एक नियमित प्रवाहक्रम हैं।

जिसप्रकार द्रव्य के विस्तारक्रम का अंश प्रदेश है; उसीप्रकार द्रव्य के प्रवाहक्रम का अंश पर्याय है।

यद्यपि यह कथन संपूर्ण द्रव्यों की अपेक्षा से है पर यहाँ विस्तारक्रम को यदि आकाशद्रव्य की अपेक्षा समझें तो सुविधा रहेगी। जैसे अनंत प्रदेशी आकाश का जो प्रदेश जहाँ स्थित है, वह वहीं रहता है, उसका स्थान परिवर्तन संभव नहीं है; उसीप्रकार सभी द्रव्यों में प्रदेशों का क्रमनियमित है। यही बात यहाँ मोतियों के हार के दृष्टांत से स्पष्ट की गई है कि मोतियों के हार में जो मोती जहाँ स्थित है, उसका स्थानक्रम परिवर्तन संभव नहीं है।

यद्यपि आकाश अचल (निष्क्रय) द्रव्य है और जीव और पुद्गल सचल (सक्रिय) द्रव्य हैं; तथापि झूलते हुए हार की बात कहकर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि जिसप्रकार झूलते हुए हार में भी मोतियों का स्थानक्रम नहीं बदल जाता, उसीप्रकार सक्रिय जीवों में प्रदेशों का क्रम नहीं पलटता।

जिसप्रकार आकाशादि द्रव्यों का विस्तारक्रम नियमित है; उसीप्रकार उनका प्रवाहक्रम भी नियमित है। जिसप्रकार नियमित विस्तारक्रम में फेरफार संभव नहीं है; उसीप्रकार नियमित प्रवाहक्रम में भी फेरफार संभव नहीं है। जिसप्रकार प्रत्येक प्रदेश का स्व-स्थान निश्चित है; उसीप्रकार प्रत्येक परिणाम (पर्याय) का स्वकाल भी निश्चित है।

जिसप्रकार सिनेमा की रील में एक लंबाई है, उस लंबाई में जहाँ जो चित्र स्थित है, वह वहीं रहता है, उसका स्थान परिवर्तन संभव नहीं है; उसीप्रकार चलती हुई रील में कौनसा चित्र किस क्रम से आयेगा यह भी निश्चित है, उसमें भी फेरफार संभव नहीं है। आगे कौनसा चित्र आयेगा—भले ही इसका ज्ञान हमें न हो, पर इससे कोई अंतर नहीं पड़ता, आयेगा तो वह अपने नियमितक्रम में ही।

जैसे जीना पर सीढ़ियों का क्षेत्र की अपेक्षा एक अपरिवर्तनीय निश्चितक्रम होता है; उसीप्रकार उन पर चढ़ने का एक अपरिवर्तनीय कालक्रम भी होता है। जिसप्रकार उन पर क्रम से ही चला जा सकता है; उसीप्रकार उन पर चढ़ने का कालक्रम भी है।

जिसप्रकार जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं, उतने ही एक जीव के भी प्रदेश हैं; उसीप्रकार तीन काल के जितने समय हैं, उतनी ही प्रत्येक द्रव्य की पर्यायें हैं। एक-एक समय की एक-एक पर्याय निश्चित है। जैसे लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु खचित है; उसीप्रकार तीनों काल के एक-एक समय में प्रत्येक द्रव्य की एक-एक पर्याय खचित है। फिर उसमें अदला-बदली का क्या काम शेष रह जाता है? इस संदर्भ में टीका में समागत यह वाक्य भी ध्यान देनेयोग्य है कि 'प्रत्येक परिणाम अपने-अपने अवसर पर ही प्रगट होता है।'

इस सबसे यही निष्कर्ष निकलता है कि जिस द्रव्य की जो पर्याय, जिस समय, जिस कारण से होना है, वह तदनुसार ही होती है।

प्रसिद्ध तार्किक आचार्य समंतभद्र स्वयंभूस्तोत्र में लिखते हैं:—

''अलंध्यशक्तिर्भवितव्यतेयं, हेतुद्वयाविष्कृत कार्यलिङ्गा।
अनीश्वरो जन्तुरहं क्रियार्त्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३३॥

यहाँ भगवान को संबोधित करते हुए आचार्य समंतभद्र कहते हैं कि हे जिनदेव! आपने यह ठीक ही कहा है कि हेतुद्वय से उत्पन्न होनेवाला कार्य ही जिसका ज्ञायक है ऐसी जो भवितव्यता, उसकी शक्ति अलंघ्य है अर्थात् उसकी शक्ति को उल्लंघन नहीं किया जा सकता है; जो होना होता है, हो के ही रहता है। फिर भी यह निरीह संसारी प्राणी 'मैं इस कार्य को कर सकता हूँ'—इसप्रकार के अहंकार से पीड़ित रहता है, जबकि भवितव्यता के बिना अनेक सहकारी कारणों को मिलाकर भी कार्य संपन्न करने में समर्थ नहीं होता।''

मुनिराज पद्मनंदि लिखते हैं:—

''लोकाश्चेतसि चिन्तयन्त्यनुदिनं कल्याणमेवात्मनः
कुर्यात्सा भवितव्यतागतवती तत्तत्र यद्रोचते।
मोहोल्लासवशादतिप्रसरतो हित्वा विकल्पान् बहून्
रागद्वेषविषोज्झितैरिति सदा सद्भिः सुखं स्थीयताम् ॥५३॥[१]

१. पद्मनंदिपंचविंशतिका : अध्याय ३, श्लोक ५३

मनुष्य मन में प्रतिदिन अपने कल्याण का ही विचार करते हैं, किंतु आयी हुई भवितव्यता वही करती है, जो कि उसको रुचता है। इसलिये सज्जन पुरुष राग-द्वेषरूपी विष से रहित होते हुए मोह के प्रभाव से अतिशय विस्तार को प्राप्त होनेवाले बहुत से विकल्पों को छोड़कर सदा सुखपूर्वक स्थित रहें।''

पंडितप्रवर आशाधरजी अध्यात्म-रहस्य में लिखते हैं:—

''भवितव्यतां भगवतीमधियन्तु रहन्त्वहं करोमीति।
यदि सद्गुरुपदेश-व्यवसित-जिनशासनरहस्याः ॥६६॥

यदि सद्गुरु के उपदेश से जिन-शासन के रहस्य को आपने ठीक निश्चित किया है, समझा है—तो 'मैं करता हूँ' इस अहंकारपूर्ण कर्तृत्व की भावना को छोड़ो और भगवती भवितव्यता का आश्रय ग्रहण करो।''

उक्त छंद में भवितव्यता को भगवती कहा गया है। इस छंद की व्याख्या में श्री युगलकिशोरजी मुख्तार लिखते हैं:—

''भगवान सर्वज्ञ के ज्ञान में जो कार्य, जिस समय, जहाँ पर, जिसके द्वारा, जिसप्रकार से होना झलका है; वह, उसी समय, वहीं पर, उसी के द्वारा और उसीप्रकार से संपन्न होगा। इस भविष्य-विषयक कथन से भवितव्यता के उक्त आशय में कोई अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि सर्वज्ञ के ज्ञान में उस कार्य के साथ उसका कारण-कलाप भी झलका है, सर्वथा नियतिवाद अथवा निर्हेतुकी भवितव्यता, जो कि असंभाव्य है, उस कथन का विषय ही नहीं है। इसके सिवाय सर्वज्ञ के ज्ञानानुसार पदार्थों का परिणमन नहीं होता, किंतु पदार्थों के परिणामनानुसार सर्वज्ञ के ज्ञान में परिणमन अथवा झलकाव होता है। ज्ञान ज्ञेयाकार है न कि ज्ञेय ज्ञानाकार।''[२]

आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी ने अपने मोक्षमार्गप्रकाशक में अनेक स्थानों पर इसकी चर्चा की है। उसके कतिपय कथन इसप्रकार हैं:—

''इसप्रकार क्रोध से बुरा चाहने की इच्छा तो हो, (पर) बुरा होना भवितव्य के आधीन है। .....इसप्रकार मान से अपनी महंतता की इच्छा तो हो, (पर) महंतता होना भवितव्य के आधीन है। .....इसप्रकार माया से इष्टसिद्धि के अर्थ छल तो करे, परंतु इष्टसिद्धि होना

१. अध्यात्म-रहस्य, पृष्ठ ८३-८४; वीर सेवामंदिर, २१ दरियागंज, दिल्ली

भवितव्य के आधीन है।.....इसप्रकार लोभ से इष्टप्राप्ति की इच्छा तो हो, परंतु इष्टप्राप्ति होना भवितव्य के आधीन है।''[१]

कषायपाहुड़ व धवल में भी कहा है:—

''प्रश्न–इन (छयासठ) दिनों में दिव्यध्वनि की प्रवृत्ति किसलिए नहीं हुई?

उत्तर–गणधर का अभाव होने के कारण।

प्रश्न–सौधर्म इंद्र ने उसी समय गणधर को उपस्थित क्यों नहीं किया?

उत्तर–नहीं किया, क्योंकि काललब्धि के बिना असहाय सौधर्म इंद्र के, उनको उपस्थित करने की शक्ति का उस समय अभाव था।''[२]

कार्तिकेयानुप्रेक्षा के उल्लिखित उद्धरण में तो अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि जिसका जो परिणमन जिस द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव के अनुसार होना जिनेन्द्रदेव ने देखा है, उसे इंद्र तो क्या स्वयं जिनेन्द्र भी नहीं टाल सकते हैं।

इस पर कई लोग कहते हैं कि यह तो बिल्कुल ठीक है कि जिनेन्द्रदेव नहीं टाल सकते क्योंकि जैन मान्यतानुसार जिनेन्द्र भगवान जगत के मात्र ज्ञाता–दृष्टा हैं, कर्त्ता–धर्त्ता नहीं; पर भगवान नहीं टाल सकते, तो क्या हम भी नहीं टाल सकते हैं? यदि हम भी नहीं टाल सकते तो फिर तो हम भगवान के ज्ञान के आधीन हो गये। जैसा उन्होंने जान लिया, हमें वैसा ही करना होगा; अथवा हमारा परिणमन वैसा ही होगा जैसा कि भगवान ने जाना है।

उनका यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि वस्तु का परिणमन भगवान के ज्ञान के आधीन नहीं है। जिस रूप में वस्तु स्वयं परिणमित हुई थी, हो रही है, और होगी; भगवान ने तो उसको उस रूप में मात्र जाना है। ज्ञान तो पर को मात्र जानता है, परिणमाता नहीं।

जिसप्रकार ज्ञान के आधीन वस्तु नहीं, उसीप्रकार वस्तु के आधीन ज्ञान भी नहीं है। दोनों का स्वतंत्र परिणमन अपने–अपने कारण से होता है।

मेरी समझ में यह नहीं आता कि ज्ञान के द्वारा जान लेने मात्र से वस्तु की स्वतंत्रता किसप्रकार खंडित हो जाती है। स्वतंत्रता ज्ञान से नहीं, अपने अज्ञान से खंडित होती है। ज्ञान तो वस्तु के परिणमन में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप किये बिना मात्र उसको जानता है।

---

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३९

२. जैनेन्द्र सिद्धांतकोश, भाग २, पृष्ठ ६१४

दूसरे यह कहना कितना हास्यास्पद है कि जो भगवान ने जाना है, उसमें वे स्वयं भले ही कोई परिवर्तन न कर सकें, पर मैं तो कर सकता हूँ। यह भगवान से भी बड़ा हो गया। जो कार्य अनंतवीर्य के धनी भगवान भी न कर सकते हों, वह कार्य यह अल्पवीर्यवान होकर भी कर दिखाना चाहता है।

इस पर यदि कोई कहे कि भगवान तो वीतरागी और सर्वज्ञ हैं। वीतरागी होने से उन्हें कुछ भी करने की आकांक्षा नहीं है और सर्वज्ञ होने से जो कुछ जैसा होना है, वह सब वे जानते हैं; अतः उन्हें कुछ फेरफार करने का विकल्प नहीं उठता; पर हम तो रागी-द्वेषी और अल्पज्ञ हैं। न तो हम भविष्य की जानते ही हैं और हमें कुछ कर दिखाने की तमन्ना भी है। अतः हमारी तुलना वीतरागी-सर्वज्ञ भगवान से क्यों करते हो?

उससे कहते हैं कि यहाँ आचार्यदेव ने 'भगवान पर के कर्त्ता नहीं है' मात्र इतनी बात नहीं कही, अपितु 'इंदो वा' शब्द द्वारा इंद्र भी नहीं कर सकता अर्थात् कोई भी नहीं कर सकता है—वाली बात भी कही है।

जिनेन्द्र नहीं कर सकते अर्थात् सर्वज्ञ और वीतरागी नहीं कर सकते और इंद्र नहीं कर सकते अर्थात् रागी और अल्पज्ञ नहीं कर सकते। 'जिनेन्द्र' के सामने 'इंद्र' शब्द का प्रयोग कर आचार्य सभी अल्पज्ञों और रागियों की बात करते हैं, क्योंकि रागियों और अल्पज्ञों में इंद्र की सर्वशक्तिशाली है। उक्त शंका के समाधान के लिये ही 'इंद्र' शब्द का प्रयोग किया गया है। पर इस अज्ञानी जगत को भगवान की नहीं, अपनी चिंता है। इसीलिए तो कहता है भले ही भगवान न कर सकें, पर मैं तो कर सकता हूँ।

क्रमबद्धपर्याय के पोषक उक्त कथन का उद्देश्य ही पर-कर्तृत्व का निषेध है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता-हर्त्ता-धर्त्ता नहीं है—यह मान्यता ही जैनदर्शन का मूलाधार (रीढ़) है।

प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय का कर्त्ता स्वयं है। परिणमन उसका धर्म है। अपने परिणमन में उसे परद्रव्य की रंचमात्र भी अपेक्षा नहीं है। नित्यता की भाँति परिणमन भी उसका सहज स्वभाव है। अथवा पर्याय की कर्त्ता स्वयं पर्याय है। उसमें तुझे कुछ भी नहीं करना है, अर्थात् कुछ भी करने की चिंता नहीं करना है। अजीवद्रव्य पर में तो कुछ करते ही नहीं; अपनी पर्यायों को करने की भी चिंता नहीं करते; तो क्या उनका परिणमन अवरुद्ध हो जाता है? नहीं; तो फिर जीव भी क्यों परिणमन की चिंता में व्यर्थ ही आकुल-व्याकुल हो?

प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय के कर्तृत्व में अथवा वह पर्याय ही अपने परिणमन में पूर्ण समर्थ है। हे आत्मन्! तुझे उसमें कुछ भी नहीं करना है, तू व्यर्थ ही उसकी चिंता में अपना भव बिगाड़ रहा है। जिस द्रव्य अथवा पर्याय के परिणमन की चिंता तू अपने सिर पर लिये घूम रहा है, झूम रहा है, उसे तेरी अथवा तेरे सहयोग की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है, परवाह नहीं है; तू ही बलिष्ठ बैलों द्वारा खींची जानेवाली गाड़ी के नीचे-नीचे चलकर 'मैं ही गाड़ी खींच रहा हूँ' इस अभिमान में ग्रस्त कुत्ते की भाँति आकुल-व्याकुल हो रहा है।

वस्तुस्वरूप तुझे विश्वास दिलाता है कि तू जगत की ओर से निश्चिंत रह, पर पर-कर्तृत्व के अहंकार से ग्रस्त यह कहता है कि बेटा दुकान संभाल ले तो मैं निश्चिन्त हो सकता हूँ। जब तक जो काम मैं करता हूँ वह काम दूसरा न करने लग जाये, तब तक मैं कैसे निश्चिंत हो सकता हूँ? पर मैं कहता हूँ कि 'क्रमबद्धपर्याय' को छोड़कर आज तक कोई ऐसा बेटा पैदा नहीं हुआ है जो कर्तृत्व के अहंकार से ग्रस्त बापू को पूरा निश्चिंत कर दे। क्रमबद्धपर्याय ही एक ऐसी है कि जो उसे समझे, उस पर श्रद्धा करे, तो निश्चिंत हो सकता है।

कर्तृत्व के अहंकार से ग्रस्त व्यक्ति की समस्या ही यह है कि कोई उसका काम संभाले, तो वह निश्चिंत हो। यह उसकी समझ में ही नहीं आता कि वह पर का या पर्याय का कुछ करता ही नहीं, अज्ञान के कारण मात्र उनकी चिंता करता है और चिंता का कर्त्ता भी तभी तक है, जब तक अज्ञान है। [क्रमशः]

जैन विद्यार्थीगृह, सोनगढ़ में अपने बच्चों को प्रवेश दिलाइये

विगत २६ वर्षों से संचालित इस छात्रावास में अध्ययन हेतु कक्षा ५ से १२ तक आर्ट्स, साइंस और कॉमर्स विषयों के लिये जैन छात्रों को प्रवेश दिया जाता है। यहाँ लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षण भी दिया जाता है तथा पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य का लाभ भी मिलता है। निवास व भोजन की अच्छी व्यवस्था है। यद्यपि प्रत्येक छात्र पर लगभग १२०) रुपये मासिक खर्च आता है तथापि पूरी फीस के रूप में ६०) रुपये तथा आधी फीसवालों से ३५) रुपये मासिक ही लिया जाता है। जो छात्र प्रवेश चाहते हों वे ५० पैसे के डाक टिकट भेजकर प्रवेश-पत्र व नियमावली २५-४-७९ तक मंगवा लें तथा उसे भरकर वार्षिक परीक्षा की अंकसूची के साथ २०-५-७९ से पूर्व भेज दें।

— मंत्री, जैन विद्यार्थीगृह, सोनगढ़, जिला भावनगर (गुजरात)

सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की तेईसवीं, चौबीसवीं और पच्चीसवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथाएँ इसप्रकार हैं:—

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभाव संजुत्तो॥२३॥
सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं॥२४॥
जदि सो पोग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं।
तो सक्को वत्तुं जे मज्झमिणं पोग्गलं दव्वं॥२५॥

जिसकी मति अज्ञान से मोहित है और जो मोह-राग-द्वेष आदि अनेक भावों से युक्त है ऐसा जीव कहता है कि 'यह शरीरादि बद्ध तथा धन-धान्यादि अबद्ध पुद्गलद्रव्य मेरा है।'

आचार्य कहते हैं:—सर्वज्ञ के ज्ञान द्वारा देखा गया सदा उपयोग लक्षणवाला जीव पुद्गलद्रव्यरूप कैसे हो सकता है? जिससे कि तू कहता है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है।'

यदि जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप हो जाए और पुद्गल जीवत्व को प्राप्त करे तो तू कह सकता है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है।'

जिसे जीव और अजीव का भेद-भाव नहीं है तथा जो शरीरादि परद्रव्यों और मोह-राग-द्वेषादि परभावों में एकत्वबुद्धि करता है ऐसे अप्रतिबुद्ध जीव को आचार्यदेव समझाते हैं। देखो! पंचमकाल में हुए आचार्य पंचम काल के शिष्य को करुणापूर्वक समझाते हैं। आचार्यदेव को समझाने का विकल्प उठा है इसलिये समझाने का प्रयत्न करते हैं, परंतु समझना तो शिष्य के पुरुषार्थ के आधीन है।

अज्ञानी जीव मानता है कि यह शरीरादि बद्ध तथा धन-धान्यादि अबद्ध पुद्गलद्रव्य मेरे हैं और मैं इनका हूँ, यह मेरा कार्य करते हैं तथा मैं इनका कार्य करता हूँ।

यहाँ बद्ध से आशय एकक्षेत्र में रहनेवाले और अबद्ध से आशय भिन्न क्षेत्र में रहनेवाले पदार्थों से है। शरीरादि बद्ध हैं क्योंकि वे एक क्षेत्र में रहते हैं, तथा धन-धान्यादि अबद्ध हैं क्योंकि वे भिन्न क्षेत्र में रहते हैं।

आचार्यदेव अज्ञानी के सामने सर्वज्ञ की साक्षी देते हुए कहते हैं कि अरे अज्ञानी जीव! सर्वज्ञ भगवान ने अपने केवलज्ञान चक्षु से आत्मा को सदा उपयोग लक्षणवाला ही देखा है, अत: वह पुद्गलमय कैसे हो सकता है? 'पुद्गलद्रव्य मेरा है' यह बात तू कहाँ से लाया? तेरा अस्तित्व तो सदा उपयोगलक्षणमय है। शरीरादि परद्रव्य का अस्तित्व तेरे अस्तित्व से भिन्न है तथा तेरा उपयोगलक्षण शरीरादि और रागादि से भिन्न है, तो परद्रव्य की सत्ता में तेरा अस्तित्व कहाँ से आ गया? इसलिये तू ऐसा समझ कि 'परद्रव्य मेरा नहीं है, मैं तो सदा उपयोगलक्षणवाला जीव हूँ।'

एक ही साथ अनेक प्रकार की बंधन की उपाधि की अति निकटता से वेगपूर्वक बहुत हुए अस्वभाव-भावों के संयोगवश जो (अप्रतिबुद्ध-अज्ञानी जीव) अनेक प्रकार के वर्णवाले आश्रय की निकटता से रंगे हुए स्फटिक पाषाण जैसा है, अत्यंत तिरोभूत अपने स्वभाव-भावत्व से जिसकी समस्त भेदज्ञानरूप ज्योति अस्त हो गई है ऐसा है, और महाअज्ञान से जिसका हृदय स्वयं स्वत: ही विमोहित है; ऐसा अज्ञानी जीव स्व-पर का भेद न करके उन अस्वभाव-भावों को ही (जो अपने स्वभाव नहीं है ऐसे विभावों को ही) अपना करता हुआ पुद्गलद्रव्य को 'यह मेरा है'—इसप्रकार अनुभव करता है।

अज्ञानी जीव एक ही साथ अनेक प्रकार की बंधन की उपाधि के अति निकटरूप से वेगपूर्वक बहते हुए अस्वभाव-भावों को अपना मानता है। वेगपूर्वक बहना अर्थात् बाह्य में अनेक प्रकार के संयोग-वियोग का एक साथ होना। बाह्य में स्त्री-पुत्र, कुटुंब इत्यादि का एक साथ आना-जाना और भीतर अनेक प्रकार के विकारी भावों का होना—यह सब एकदम वेगपूर्वक होता है। भावकर्म, द्रव्यकर्म और द्रव्यकर्म के बाह्य फलरूप नोकर्म आदि अनेक प्रकार के बंधनों की उपाधि एक साथ बनी हुई है। इसप्रकार एक ही साथ एक ही क्षण में अनेक प्रकार के बंधनों की उपाधि से अति वेगपूर्वक होनेवाला परिणमन अस्वभावभाव है,

संयोग-भाव है, स्वभाव-भाव नहीं है, यह जीव अपने उपयोगलक्षण को भूलकर अस्वभावभावों के वश होकर अज्ञानी हो जाता है।

जैसे स्फटिक पाषाण में अनेक प्रकार के वर्णों की निकटता से अनेक वर्णरूपता दिखायी देती है, स्फटिक का निज श्वेत-निर्मलभाव दिखायी नहीं देता; उसीप्रकार अज्ञानी को कर्मोपाधि से आच्छादित आत्मा का शुद्धस्वभाव दिखायी नहीं देता, इसलिये वह पुद्गलद्रव्य को अपना मानता है।

जैसे स्फटिक मणि का स्वभाव तो स्वच्छ-निर्मल है, किंतु अन्य वस्तु की निकटता से उसमें भिन्न-भिन्न रंग दिखायी देते हैं। परवस्तु के संयोग से दिखनेवाले भिन्न-भिन्न रंग पर की उपाधि हैं, स्फटिक का स्वभाव नहीं है। उसीप्रकार आत्मा का स्वभाव तो शुद्ध, निर्मल, ज्ञानानंदस्वरूप ही है, किंतु उसमें पर-संयोग से अनेक प्रकार के शुभाशुभ विकारीभाव दिखायी देते हैं। ये शुभाशुभ भाव उपाधि भाव ही हैं, आत्मा का मूलस्वभाव नहीं हैं। पर-संयोग से रंगे हुए स्फटिक मणि के समान अज्ञानी जीव भी शुभाशुभ भावों के वश होकर पर को अपना मानता है।

पर-पदार्थों के संयोग से भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग दिखायी देते समय भी स्फटिक का स्वभाव तो स्वच्छ और निर्मल ही है; उसीप्रकार विकारी भावों के संयोग के समय भी भगवान आत्मा तो निर्मल और शुद्धस्वभावी ही है; परंतु अज्ञानी की बुद्धि मोह-राग-द्वेषादि अस्वभाव-भावों के वश हो गयी है अर्थात् भेदज्ञान ज्योति अस्त हो गयी है। 'मैं देहादि जड़ की क्रिया एवं पुण्य-पापरूप विकारी क्रिया का कर्त्ता हूँ'—ऐसा मानने से अज्ञानी की दृष्टि में उसका ज्ञानस्वभाव तिरोभूत हो गया है, इसलिये उसकी भेदज्ञान ज्योति अस्त हो गयी है, परंतु नष्ट नहीं हुई है अर्थात् स्वभाव का अनुभव करके वह भेदज्ञान ज्योति प्रगट कर सकता है।

अज्ञानी जीव स्वभाव और पर-भाव को भिन्न-भिन्न न जानकर शरीर एवं रागादि को अपना मानकर विमोहित हो रहा है। अज्ञानी को किसी ईश्वर या कर्म ने विमोहित नहीं किया है। पर से भिन्न ज्ञानस्वभाव को भूलकर देह और रागादि अस्वभाव-भावों को अपना अनुभव करता हुआ स्वयं विमोहित हो रहा है।

जैसे स्फटिक मणि में जो लाल-पीला आदि रंग झलकता है, यह असत्य नहीं है; उसीप्रकार कर्मसंयोग के समय आत्मा विकारी होता है, यह बात भी असत्य नहीं है। वर्तमान

पर्याय में मोह-राग-द्वेषादि विकारी भाव होते हैं। इसलिये पर्याय की अपेक्षा आत्मा अशुद्ध है। यदि कोई वर्तमान अवस्था में भी आत्मा को शुद्ध माने तो वह भी अज्ञानी है। पर्यायदृष्टि से भी आत्मा में विकार न मानना अज्ञान है। पर्याय में विकार भाव है अर्थात् यह जीव संयोगीभाव के वश होकर अज्ञानी होता हुआ पुद्गलद्रव्य को अपना अनुभव करता है। यहाँ विकारी भावों को भी पुद्गलद्रव्य कहा है।

यहाँ दो प्रकार से बात कही है। एक ओर पुद्गलद्रव्यदृष्टि और दूसरी ओर चैतन्यद्रव्यदृष्टि। एक ओर शरीर-मन-वाणी की प्रवृत्ति, पुण्य-पाप का फल, द्रव्यकर्म तथा मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म—यह सब परसंयोग का दल है, ये सब पुद्गल के ही भाव हैं, इसलिये इनका एक ही प्रकार है। इस पुद्गल के दल से भिन्न ज्ञानस्वभाव की प्रतीति न करके अपने को इन पर-भावरूप अनुभव करना अर्थात् 'मैं शरीरादि अथवा रागादिरूप हूँ अथवा शरीर या रागादि मेरे हैं'—ऐसा अनुभव करना पुद्गलद्रव्यदृष्टि है। ऐसी दृष्टिवाला अप्रतिबुद्ध है—अज्ञानी है।

दूसरी ओर पुद्गल के दल से भिन्न शुद्ध चैतन्य का दल है। 'मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूपी हूँ'—ऐसी दृष्टि चैतन्यद्रव्यदृष्टि है। यहाँ द्रव्य के दो भेद किये गये हैं—चैतन्य और पुद्गल। परसंयोगजनित शुभाशुभभाव को भी जड़ कहा है तथा उनसे भिन्न चैतन्यस्वभाव को पृथक् कहा है।

शुभाशुभ भावों को अपना माननेवाले अज्ञानी जीव को संबोधित करते हुए आचार्यदेव कहते हैं:—

रे दुरात्मन्! आत्मघात करनेवाले! जैसे परम अविवेकपूर्वक खानेवाले हाथी आदि पशु सुंदर आहार को तृणसहित खा जाते हैं; उसीप्रकार खाने के स्वभाव को तू छोड़! छोड़!! जिसने समस्त संदेह, विपर्यय, अनध्यवसाय दूर कर दिये हैं और जो विश्व को प्रकाशित करने के लिये अद्वितीय ज्योति है—ऐसे सर्वज्ञ के ज्ञान से स्फुट (प्रगट) किया गया जो नित्य उपयोग स्वभावरूप जीवद्रव्य, वह पुद्गलद्रव्यरूप कैसे हो गया कि जिससे तू यह अनुभव करता है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है'? क्योंकि यदि किसी भी प्रकार से जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप हो और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यरूप हो तभी 'नमक के पानी' इसप्रकार के अनुभव की भाँति ऐसी

अनुभूति वास्तव में ठीक हो सकती है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है'—किंतु ऐसा तो किसी भी प्रकार से नहीं बनता।

आचार्यदेव ने पहली गाथा में समस्त आत्माओं को सिद्ध समान कहा था और यहाँ दुरात्मा कहकर संबोधित किया है, क्योंकि यहाँ पर्याय में होनेवाली भूल को सुधारने के उद्देश्य से आचार्यदेव ने कठोर भाषा में संबोधित किया है।

आचार्यदेव दृष्टांत देते हुए समझाते हैं कि हे दुरात्मन्! आत्मा के अहिंसक स्वभाव को न जाननेवाले आत्मघाती! जैसे अविवेकी हाथी लड्डुओं को तृणसहित खा जाता है, उसे सुंदर मिष्ठान्न और तृण की भिन्नता की खबर नहीं है; उसीप्रकार तुझे तृणवत् शुभाशुभ भाव और मिष्ठान्नवत् आत्मस्वभाव की पृथक्ता का भान नहीं है, ऐसे अविवेक को तू छोड़। अज्ञानी को मात्र पर का ही स्वाद आता है, उसे अपने निर्मल स्वभाव का स्वाद नहीं आता।

विकार के साथ एकमेक होने के कारण अज्ञानी अपने अविकारी स्वभाव को भूल गया है, अतः आचार्यदेव उसे स्वभाव के अमृतरस को जानकर पर का स्वाद छोड़ने की प्रेरणा देते हुए समझाते हैं कि हे भाई! तू जो कुछ भोग रहा है वह तेरा स्वाद नहीं है। शरीर-धन-भोजनादि पुद्गलद्रव्यों को तो कोई जीव भोग सकता ही नहीं, किंतु अज्ञानी पर के प्रति होनेवाली राग-द्वेष, हर्ष-शोकादि विकारों की आकुलता को ही भोगता है जो कि जीव का स्वभाव नहीं है। अतः अब इस आकुलता का स्वाद भोगना छोड़ कर निराकुल अतीन्द्रिय ज्ञानानंद-स्वभाव का भोग कर।

सर्वज्ञदेव ने संशय, विपर्यय और अनध्यवसायरहित तथा लोकालोक को प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञान चक्षु से जीव को नित्य उपयोगस्वभावी देखा है। देखो! यहाँ आचार्यदेव ने स्वयं सर्वज्ञ होने की तीव्र आकांक्षापूर्वक सर्वज्ञ को सामने रखकर बात की है। सर्वज्ञ भगवान ने नित्य संपूर्ण निर्मल उपयोगस्वभाव को स्वयं प्रगट करके जगत के समक्ष आत्मा को नित्य निर्मल उपयोगस्वरूपी कहा है।

नित्य उपयोगस्वभाव कहने से यह भी प्रगट होता है कि द्रव्य की अनादि-अनंत निरपेक्ष कारणपर्याय भी शुद्ध है। द्रव्य और गुण तो त्रिकाल शुद्ध हैं ही, किंतु उनकी निरपेक्ष पर्याय भी शुद्ध है—यह बात इसमें से स्पष्ट होती है।

सर्वज्ञ भगवान ने नित्य चैतन्यस्वरूप आत्मा का वर्णन किया है। यह चैतन्यस्वरूप आत्मा पुद्गलमय कैसे हो गया कि जिससे तू यह अनुभव करता है कि 'पुद्गलद्रव्य मेरा है।' वस्तु तो सदा स्थिर है और उसका लक्षण भी स्थिर है। भगवान ने अपने केवलज्ञान में नित्य टंकोत्कीर्ण एकरूप उपयोगस्वभावी आत्मा देखा है; फिर भला वह आत्मा जड़ पुद्गलद्रव्यमय कैसे हो सकता है जिससे तू पुद्गलद्रव्य में अपनापन मान रहा है।

चैतन्यस्वभाव नित्य उपयोगस्वरूप है। उपयोग अर्थात् ज्ञान-दर्शनस्वभाव, भला वह पुद्गल कैसे हो सकता है? और जड़स्वरूप पुद्गल उपयोगस्वरूप कैसे हो सकता है? आत्मा तो अपने ज्ञान-दर्शन की क्रिया करनेवाला है, वह पर का कुछ कर नहीं सकता। जो यह मानता है कि 'मैं पर का कुछ कर सकता हूँ', वह आत्मा को जड़ मानता है। अज्ञानी अपने अनाकुल शांतस्वभाव को भूलकर पर को अपना मानता है, परंतु परपदार्थ जीव का तब हो सकता है जबकि जड़ आत्मा हो जाये और आत्मा जड़ हो जाये और यदि ऐसा होता हो तो अज्ञानी की मान्यता सत्य कही जा सकती है, किंतु ऐसा तो कभी होता नहीं है और न हो ही सकता है।

यदि मन-वचन-काय आत्मा हो जाये और आत्मा मन-वचन-कायरूप होकर शरीरादि की क्रिया कर सकता हो तो अज्ञानी का अनुभव सच कहला सकता है, किंतु ऐसा तो कभी भी किसी भी प्रकार से नहीं होता।

दृष्टांत देकर इसी बात को स्पष्ट करते हैं। जैसे खारापन जिसका लक्षण है, ऐसा नमक पानीरूप होता हुआ दिखायी देता है और द्रव्यत्व (प्रवाहीपन) जिसका लक्षण है, ऐसा पानी नमकरूप होता दिखायी देता है, क्योंकि खारेपन तथा द्रव्यत्व का एकसाथ रहने में अविरोध है अर्थात् उसमें कोई बाधा नहीं आती; परंतु इसप्रकार नित्य उपयोग लक्षणवाला जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य होता हुआ दिखायी नहीं देता और नित्य अनुपयोग (जड़) लक्षणवाला पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्य होता हुआ देखने में नहीं आता, क्योंकि प्रकाश और अन्धकार की भाँति उपयोग और अनुपयोग का एक साथ रहने में विरोध है; जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते। इसलिये तू सर्वप्रकार से प्रसन्न हो, (अपने चित्त को उज्ज्वल करके) सावधान हो, और स्वद्रव्य को ही 'यह मेरा है' इसप्रकार अनुभव कर।

अपने पवित्र ज्ञानस्वरूप को भूलकर—'मैं शरीर, कुटुंब, लक्ष्मी आदि को भोग सकता हूँ'—अज्ञानी की यह मान्यता तभी सच हो सकती है जबकि नमक का पानी और पानी का

नमक बनने के समान आत्मा जड़ हो जाये और जड़ आत्मा हो जाये, किंतु ऐसा कभी नहीं होता।

जैसे समुद्र का पानी नमक की डली में परिवर्तित हो जाता है और नमक की डली फिर पानीरूप हो जाती है अर्थात् खारेपन और प्रवाहीपन के एक साथ रहने में कोई बाधा नहीं आती तथा प्रवाहीपन का डलीरूप होने में कोई विरोध नहीं आता; उसप्रकार नित्य उपयोगलक्षणवाला जीवद्रव्य कभी भी पुद्गलद्रव्यरूप में परिवर्तित होता हुआ दिखायी नहीं देता।

जैसे नमक की डली का स्वरूप खारा है, उसप्रकार आत्मा का रूप ज्ञान-दर्शन है। जैसे नमक पानी में गल जाता है, उसप्रकार आत्मा शरीरादि पुद्गलद्रव्य में गलता हुआ दिखायी नहीं देता। नमक की एक पर्याय पानी के रूप में और दूसरी पर्याय डली के रूप में होती है, परंतु आत्मा की एक अवस्था जानने-देखनेरूप हो, दूसरी अवस्था जानने-देखने रहित हो—ऐसा तीन काल और तीन लोक में नहीं होता।

जिसप्रकार अंधकार और प्रकाश परस्पर विरोधी हैं; उसीप्रकार ज्ञान-दर्शन की क्रिया और जड़ की क्रिया परस्पर विरोधी हैं, अर्थात् जड़ की क्रिया एवं चैतन्य की क्रिया दोनों एक द्रव्य में नहीं हो सकती। अंधकार में प्रकाश नहीं होता और प्रकाश में अधंकार नहीं होता; उसीप्रकार शरीरादि की क्रिया एवं शुभाशुभ भाव ज्ञान-प्रकाश में नहीं होते तथा ज्ञान-प्रकाश शरीरादि की क्रिया एवं शुभाशुभ भाव में नहीं होता।

अंधकार के प्रकाशरूप होने में विरोध है, उसीप्रकार नित्यस्थायी उपयोगलक्षण चैतन्य को अनुपयोगस्वरूप जड़ होने में विरोध है। जड़ की क्रिया चैतन्यस्वरूप हो और चैतन्य की क्रिया जड़स्वरूप हो यह कभी नहीं हो सकता। जागृत चैतन्यज्योति और जड़स्वरूप अंधकार कभी भी एक साथ नहीं होते। आत्मा के चिदानंदस्वभाव का जड़ पदार्थों और उपाधिरूप विकारी भाव के साथ रहने में विरोध है। न तो जड़ पदार्थ बदल कर आत्मा हो सकता है और न आत्मा बदलकर जड़रूप हो सकता है। ज्ञान-दर्शन का व्यापार पुण्य-पाप के विकाररूप नहीं होता और पुण्य-पाप का विकार ज्ञान-दर्शन का व्यापाररूप नहीं होता। ज्ञान-दर्शन की आंतरिक अरूपी क्रिया और जड़ की रूपी क्रिया दोनों एकसमय में होते हुए भी भिन्न-भिन्न रहती हैं।

आचार्यदेव अज्ञानी को समझाते हुए पूछते हैं कि तेरा धर्म अर्थात् तेरा सुख क्या आत्मा में से जड़ में चला गया है जो तो उसे जड़ में ढूँढ़ता है ? और क्या जड़ तेरे आत्म-स्वभावरूप परिणमित हो जाता है जो वह तुझे सुख दे देगा ? स्वयं ज्ञान और सुखस्वरूप होते हुए भी पर से ज्ञान और सुख चाहता है—यह कितने आश्चर्य की बात है। परपदार्थ को अपने रूप मानना भ्रांति है तथा अनुकूलता-प्रतिकूलता में राग-द्वेष होना अचारित्र है।

आचार्यदेव समझाते हैं कि भाई! जड़ की क्रिया में अपने धर्म को ढूँढ़ना छोड़ दे। चैतन्य अर्थात् जानने-देखने में ही तेरा धर्म है। इसलिये तू सर्व प्रकार से प्रसन्न हो, अपने चित्त को उज्ज्वल करके सावधान हो, और स्वद्रव्य को ही 'यह मेरा है' ऐसा मानकर अनुभव कर।

तू ज्ञाता-दृष्टा स्वभावरूप वस्तु है, इसलिये न तो जड़ तेरे लिये सहायक है और न तू जड़ के लिये। अत: एक बार संपूर्णतया प्रसन्न होकर आनंद अनुभव कर।

इन गाथाओं में आचार्यदेव ने बिल्कुल अप्रतिबुद्ध को समझाया है। यहाँ चौथे या छठवें, सातवें गुणस्थानवर्ती की बात नहीं है, किंतु आर्चादेव महा अज्ञानी से कहते हैं कि तू ऐसा मानना छोड़ दे कि मेरी समझ में नहीं आ सकता। यह ज्ञानमूर्ति आत्मा कभी भी जड़ के साथ एकमेक नहीं हुआ, इसलिये जड़ और चेतन दोनों को भिन्न-भिन्न जानकर अपने चित्त को उज्ज्वल करके सावधान हो! मैं परमात्मस्वरूप हूँ, मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ा है—ऐसा समझकर अपने चित्त को उज्ज्वल कर! कहीं अन्यत्र सुख प्राप्त होगा ऐसी मिथ्या मान्यता को दूर कर चित्त को उज्ज्वल कर!

जैसे लोकव्यवहार में लड़के के लिये धन-दौलत का हिस्सा बाँटकर दे दिया जाता है; उसीप्रकार आचार्यदेव ने जड़ और चेतन का बंटवारा करके दो भाग कर दिये हैं कि तेरा भाग तुझमें और जड़ का भाग जड़ में है। इसलिये अब एक बार आनंदित हो और आश्चर्य कर कि अहो! आनंदघन चैतन्यस्वभाव ऐसा है? इसप्रकार आनंदविभोर होकर सावधान हो। अनादिकालीन विपरीत दशा को बदले बिना परिभ्रमण का अंत नहीं आयेगा।

सावधान हो! ऐसा कहकर आचार्यदेव पुरुषार्थ करने की प्रेरणा देते हैं। पंचम काल बाधा देता है—ऐसा कहकर आचार्यदेव ने सावधान किया है कि यह तेरे ही हाथ की बात है। पहले कहा था कि तू स्वयं विमोहित हो रहा है और अब कहते हैं तू स्वयं सावधान हो। ✱

क्षायकादिभावस्थान भी जीव नहीं

परमपूज्य दिगंबर आचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की ४१वीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

णो खइयभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा वा।
ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा॥४१॥

जीव को क्षायिकभाव के स्थान नहीं हैं, क्षयोपशमस्वभाव के स्थान नहीं हैं, औदयिकभाव के स्थान नहीं हैं अथवा उपशमस्वभाव के स्थान नहीं हैं।

चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा पंचमभाव के स्वरूप का यह कथन है।

१. अवस्था में रहनेवाली विपरीतता तथा अपूर्णता का नाश होकर स्वभाव जैसी ही पूर्णदशा पर्याय में प्रगट होने को क्षायिकभाव कहते हैं।

"कर्मों के क्षय से जो भाव हो उसे क्षायिकभाव कहते हैं।"

आत्मावस्तु त्रिकाल स्वभाव से शुद्ध है, उसकी पर्याय में पुण्य-पाप के विकारी भाव होते हैं, वे भाव अंतरस्वभाव में नहीं हैं, किंतु परलक्ष से नवीन-नवीन होते हैं; उन्हें उदयभाव कहते हैं और उनके परिणाम में द्रव्यकर्म बँधते हैं। विकार तो उदयभाव है, अतः आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है। आत्मा तो शुद्ध चिदानंदस्वरूप है—ऐसी श्रद्धा-ज्ञान करके आनंदकंद स्वभाव में पूर्ण एकाग्रता करके विकार और अपूर्णता का अभाव तथा निमित्तरूप से कर्म का भी अभाव हो जाये-उसे क्षायिकभाव कहते हैं।

अपूर्ण ज्ञान का व्यय होकर पूर्ण केवलज्ञान प्रगटे, अपूर्ण दर्शन का व्यय होकर पूर्ण केवलदर्शन प्रगटे, अपूर्ण वीर्य का व्यय होकर पूर्ण अनंतवीर्य प्रगटे, विपरीत श्रद्धा तथा विपरीत आचरण का नाश होकर पूर्ण प्रतीति और पूर्ण आचरण प्रगटे—उसे क्षायिकभाव कहते हैं; उसी समय उन-उन कर्मों का क्षय हुआ होता है।

साधकजीव को क्षायिकभाव प्रगट नहीं है और जो प्रगट नहीं है उसका विचार करने पर राग होता है किंतु धर्म नहीं होता।

केवलज्ञानादि की जो पर्यायें प्रगट होती हैं वे नवीन प्रगट होती हैं। क्षायिकभाव भी आत्मा का त्रिकाली स्वरूप नहीं है। अपूर्णता और विपरीतता का क्षय करके तथा निमित्तरूप से कर्मों का भी क्षय करके नवीन उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायिकभाव है। निम्न दशावाले को वह भाव प्रगट नहीं है और जो भाव प्रगट नहीं है, उसका विचार करने पर राग की उत्पत्ति होती है– अतः क्षायिकभाव के आश्रय से धर्म नहीं होता। केवली भगवान–जिन्हें क्षायिकभाव प्रगट हो गया है–उन्हें अब कुछ करना शेष रहा नहीं, परंतु जिनको प्रगट हुआ नहीं है, उनको धर्म करने के लिये किसका आश्रय लेना? देव–गुरु–शास्त्र के आश्रय की तो बात ही नहीं है, क्योंकि उनके आश्रय से धर्म होता नहीं। अपने में होनेवाले दया–दानादि के भाव औदयिकभाव हैं– विकार हैं, विकार के आश्रय से अविकारी दशा होती नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि औदयिकभाव का नाश होने पर प्रगट होनेवाले क्षायिकभाव का भी अवलंबन करने योग्य नहीं है, कारण कि वह एक समय की पर्याय है, नवीन प्रगट होती है, कर्म–क्षय की अपेक्षा रखती है, उसके लक्ष से राग होता है–धर्म नहीं होता।

केवलज्ञान प्रगट होने के पश्चात् भी केवलज्ञान में से केवलज्ञान प्रगट नहीं होता, वह तो ध्रुव स्वभाव में से समय–समय प्रगट होता है। अतः शुद्धस्वभाव परमपारिणामिकभाव ही आलंबन करनेयोग्य है—क्षायिकभाव का आलंबन उचित नहीं। पर्यायदृष्टि छुड़ाकर द्रव्यदृष्टि कराने के लिये ऐसा कहा गया है कि जीव के क्षायिकभावों के स्थान नहीं हैं।

यह बात बहुत सूक्ष्म है। जीव लौकिक अभ्यास में जैसा समय लगाता है, वैसा इसमें लगाना चाहिये। आत्मा वस्तु है, ज्ञान–दर्शन का पिण्ड है, वर्तमान में आकुलता है; आकुलता न हो, प्रगट आनंद होना चाहिये। आकुलता टालकर परमानंद दशा प्रगट कैसे हो? उसकी रीति बताते हैं।

भाई! तू स्वभाव को चूकता है तो राग–द्वेष होता है और निमित्तरूप से कर्म बँधते हैं। सच्ची श्रद्धा–ज्ञान होने पर वह भूल टल जाती हे और वीतरागता तथा केवलज्ञान होता है—कर्म भी टल जाते हैं। उस नयी पूर्ण अवस्था को क्षायिकभाव कहते हैं, किंतु वह अवलंबन करने

योग्य नहीं है। पूर्ण शुद्धस्वभाव परमपारिणामिकभाव का अवलंबन करने से धर्मदशा का प्रारंभ होकर पूर्णदशा अर्थात् क्षायिकभाव प्रगट होता है।

२. क्षायोपशमिकभाव आत्मा में से निकल जाता है इसलिये वह जीव का वास्तविक स्वरूप नहीं है-उसके लक्ष से धर्म नहीं होता।

''कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव हो वह क्षायोपशमिकभाव है।''

जीव ने अमुक कर्मों का नाश किया है और अमुक कर्म अभी नाश करना शेष है—ऐसे कर्मों के क्षयोपशम के निमित्त से जीव की पर्याय में क्षायोपशमभाव होता है। आत्मभान होने के बाद भी सम्यग्ज्ञान आंशिक प्रगट हुआ है और अमुक शेष है-आवरणवाला है। क्षयोपशमभाव आत्मा की पर्याय है, वह आत्मा में से टल जाती है, अत: आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है। उसके अवलंबन से राग की उत्पत्ति होती है तथा पर्याय में से पर्याय प्रगट होती नहीं, अत: वह शरण लेने योग्य नहीं है। परमपारिणामिकभाव का अवलंबन करने से धर्मदशा प्रगट होती है। क्षयोपशमभाव जीव की पर्याय होने पर भी वह जीव का वास्तविक स्वरूप नहीं है। अत: द्रव्यदृष्टि कराने के लिये कहा कि जीव के क्षयोपशमस्वभाव के स्थान नहीं हैं।

३. औदयिकभाव विकारीभाव है। उसके लक्ष से धर्म नहीं होता।

''कर्मों के उदय से जो भाव होता है, वह औदयिकभाव है।''

अपने शुद्धस्वभाव को चूककर कर्मोदय से कर्म का लक्ष करके जो शुभ या अशुभभाव होता है, वह औदयिकभाव है-विकारीभाव है। चाहे जितना शुभभाव हो तथपि वह औदयिकभाव है-विकार है; वह अपनी पर्याय होने पर भी आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं, अत: विकार के लक्ष से धर्म होता नहीं। इसलिये जीव के औदयिकभाव के स्थान नहीं हैं; ऐसा कहकर विकार का लक्ष छुड़ाया है और शुद्धजीव का लक्ष करने के लिये कहा है।

४. औपशमिकभाव अधूरी निर्मल पर्याय है, उसके लक्ष से धर्म नहीं होता।

''कर्मों के उपश्म से जो भाव होता है, वह औपशमिकभाव है।''

पानी में नीचे मैल बैठ जाये और ऊपर का पानी निर्मल हो जाये; उसीप्रकार कर्म सत्ता में तो है, परंतु उदय में नहीं है-दबा हुआ है। उसके निमित्त से आत्मा की अवस्था में मलिनता के दब जाने से उत्पन्न होनेवाला निर्मलभाव औपशमिकभाव है। सत्ता में कर्म पड़ा हुआ है।

उपशमभाव आत्मा की निर्मल पर्याय होने पर भी आत्मा में से निकल जाता है; वह आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है। पर्याय के लक्ष से राग उत्पन्न होता है तथा अधूरी निर्मल पर्याय में से दूसरी निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। निर्मलता प्रगटने का कारण परमपारिणामिकभाव है। अतः शुद्धजीव का लक्ष कराने के लिये जीव के उपशमस्वभावभाव के स्थान नहीं हैं—ऐसा कहा है।

५. परमपारिणामिकभाव अनादि अनंत एकरूप शुद्ध है, उसके आश्रय से धर्म होता है।

''सकल कर्मोपाधि से विमुक्त ऐसे परिणाम से जो भाव हो, वह पारिणामिकभाव है।''

यहाँ सकल कर्मोपाधि से विमुक्त का अर्थ 'कर्म से छूटा हुआ' मत समझना; यहाँ तो जिस भाव में कर्मों की अपेक्षा ही नहीं है—उसे विमुक्त कहा है।

जैसा त्रिकाली स्वभाव शुद्ध है वैसा ही जो परिणमे उसको पारिणामिकभाव कहते हैं। त्रिकाली द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और पर्याय भी शुद्ध—उस सहित जो है उसे कारणपरमात्मा कहते हैं। स्वभाव गुण-पर्यायों से संयुक्त और त्रिकाल निरावरण निरंजन परमात्मा है; वैसे परमात्मा के एकरूप रहनेवाले शुद्धभाव को परमपारिणामिकभाव कहते हैं।

औदयिकादिभाव पर्याय के हैं, त्रिकाली स्वभाव के वे भाव नहीं हैं। परमपारिणामिकभाव इन चार भावों से रहित है। जो द्रव्य का भाव है, त्रिकाली एकरूप शुद्धभाव है—उसके बताने का हेतु यह है कि औदयिकादि चारों भाव तो अनित्य हैं, उनके लक्ष से रागोत्पत्ति होती है; अतः उन चारों अनित्यों का लक्ष छुड़ाकर नित्य परम-पारिणामिकभाव का लक्ष कराया गया है।

वस्तु ध्रुव है, उसमें होनेवाली अवस्था क्षणिक है, अवस्था के लक्ष से राग होता है, इसलिये ध्रुवचैतन्यस्वभाव में यह चारों भाव नहीं हैं—ऐसा कहकर शुद्धस्वभाव परमपारिणामिकभाव की श्रद्धा करायी है—क्योंकि उसी की श्रद्धा-ज्ञान करने से धर्म होता है।

आत्मा का शुद्धस्वभाव—परमपारिणामिकभाव अनादि-अनंत एकरूप है, उसके आश्रय से धर्म होता है। औदयिकभाव विकार है, विकार के आश्रय से धर्म नहीं होता। उपशमभाव के समय सत्ता में कर्म पड़ा है, वह भाव निर्मल होने पर भी है तो पर्याय ही; और पर्याय के लक्ष से राग

होता है—धर्म नहीं। अत: द्रव्यदृष्टि कराने के प्रयोजन से ऐसा कहा कि जीव के चार भाव नहीं हैं; शुद्धजीव तो परमपारिणामिकभावरूप है और उसी के आश्रय से धर्म होता है।

इन पाँच भावों में से औपशमिकभाव के दो भेद हैं, क्षायिकभाव के नौ भेद हैं, क्षायोपशमिकभाव के अठारह और औदयिकभ्व के इक्कीस भेद हैं, तथा पारिणामिकभाव के तीन भेद हैं।

औपशमिक भाव:-औपशमिक भाव के दो भेद इसप्रकार हैं:—अनादि मिथ्यादृष्टि को आत्मा का सच्चा भान हो तब प्रथम उपशमभाव प्रगट होता है-अत: उसे पहले लिया है। उसके दो भेद हैं (१) उपशमसम्यक्त्व (२) उपशमचारित्र।

(१) उपशमसम्यक्त्व:-जीवद्रव्य की श्रद्धागुण की निर्मल पर्याय है। आत्मा परपदार्थ से जुदा है, विकार से रहित है। ऐसे शुद्धजीव की श्रद्धा-ज्ञान करने पर जीव को प्रथम उपशमसम्यग्दर्शन प्रकट होता है। सत्ता में कर्म पड़ा है अर्थात् कुछ समय के लिये दब गया है इसलिये उसे उपशम कहते हैं, उसका काल अंतर्मुहूर्त है। उपशमसम्यक्त्व अपूर्ण निर्मल पर्याय है; अपूर्ण निर्मल पर्याय में से पूर्ण निर्मल पर्याय प्रकट नहीं हो सकती, इसलिये उपशमसम्यक्त्व मोक्ष का कारण नहीं; मोक्ष का कारण तो मात्र एक शुद्धस्वभाव ही है।

(२) उपशमचारित्र:-सच्ची श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक शुद्धात्मा में अंतररमणता करना वह चारित्र है। किंतु सत्ता में कर्म पड़ा है, अत: वह उपशमचारित्र है। उसका काल अंतर्मुहूर्त है, सादि-सांत है, उसके लक्ष से मोक्षदशा नहीं होती-पर्याय में से पर्याय प्रकट नहीं होती।

परमपारिणामिकस्वभावभाव अनादि अनंत हैं, उसके आश्रय से धर्म होता है। सोने में थोड़ा मैल हो तो उस मैल में से सोने का जेवर नहीं बनता। उसी भाँति औदयिकभाव विकार है, उसमें से अविकारी दशा नहीं होती। पुन: सोने के कुंडल में से अंगूठीरूप नया जेवर नहीं बनता, अपितु कुंडल का अभाव होकर ही अंगूठी बनती है, अर्थात् सोने में से ही नया जेवर बनता है। उसी तरह उपशमभाव पर्याय है, पर्याय में से मोक्ष की पर्याय प्रकट नहीं; उपशमसम्यक्त्व अथवा उपशमचारित्र के रहते हुए मोक्षदशा होती नहीं, किंतु चैतन्य शुद्धस्वभाव अनादि अनंत पारिणामिकभावरूप है, वह मोक्ष का कारण है, उपशमचारित्र मोक्ष का कारण नहीं।

इसप्रकार उपशमभाव पर्याय है और पर्याय में से पर्याय होती नहीं, अत: उपशमभाव मोक्ष का कारण नहीं है।

क्षायिकभाव पूर्ण निर्मलदशा होने पर भी पर्याय होने के कारण धर्म के लिये आदरणीय नहीं है।

क्षायिकभाव के नौ भेद इसप्रकार हैं:—

(१) क्षायिकसम्यक्त्व:-आत्मा परपदार्थ से भिन्न है तथा विकार एवं पर्याय जितना भी आत्मा नहीं है। आत्मा परिपूर्ण शुद्ध है-ऐसे प्रतीति होना सम्यक्त्व है। परिपूर्ण शुद्ध सम्यक्त्व प्रकट होना कि जिसमें निमित्तरूप से दर्शनमोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हुआ हो वह क्षायिकसम्यक्त्व है। यह चौथे गुणस्थान से होता है और सादि अनंतकाल रहता है-परंतु यह भी है तो पर्याय ही। इस क्षायिकसम्यक्त्व की पर्याय के आश्रय से भी है केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता, वह तो शुद्धस्वभाव के आधार से प्राप्त होता है। अत: क्षायिकसम्यक्त्व भी मोक्ष का कारण नहीं है।

(२) क्षायिक यथाख्यातचारित्र:-आत्मभान के पश्चात् आत्मा की परिपूर्ण लीनता से मोहनीय कर्म के क्षय होने पर प्रगट होनेवाली अवस्था को यथाख्यातचारित्र कहते हैं। यह बारहवें गुणस्थान में प्रगट होता है, किंतु यह भी एक समय की अवस्था है; इस पर्याय में से मोक्ष की पर्याय प्रगट नहीं होती, मोक्ष का आधार ध्रुव स्वभाव है-यथाख्यातचारित्र मोक्ष का कारण नहीं है। ऐसी वस्तुस्थिति में रोटी न खाना, उपवास करना-यह भला मोक्ष का कारण कैसे होगा ? नहीं होगा।

(३) केवलज्ञान:-यथाख्यातचारित्र होने के बाद आत्मा में केवलज्ञानदशा तेरहवें गुणस्थान में प्रगट होती है, उससे स्व-पर सभी पदार्थों का युगपत् ज्ञान होता है। इसमें ज्ञानावरणी कर्म का क्षय हो जाता है और यह सादि-अनंत काल तक रहता है। यह भी एक समय की पर्याय है, केवलज्ञान में से केवलज्ञान की अवस्था प्रगट नहीं होती। केवलज्ञान पर्याय प्रगट होने का कारण ध्रुवस्वभाव है। पुन:, निचली दशावाले को अभी केवलज्ञान प्रगट नहीं है, अत: उसका विचार करने पर राग उत्पन्न होता है-धर्म नहीं। अत: केवलज्ञान भी स्वयं पर्याय होने के कारण धर्म का कारण नहीं है—धर्म का कारण तो शुद्धस्वभाव ही है।

(४) केवलदर्शन:-आत्मा में परिपूर्ण दृष्टाशक्ति व्यक्त हो जाना और निमित्तरूप से दर्शनावरणी कर्म का सर्वथा क्षय हो जाना केवलदर्शन कहा जाता है। वह सादि-अनंतकाल रहता है; परंतु वह भी पर्याय है और पर्याय के लक्ष से विचार करने पर राग होता है। इसलिये केवलदर्शन भी धर्म का कारण नहीं है।

(५) क्षायिकज्ञान:-शुद्धात्मा के आश्रय से प्रगट होनेवाली निर्मल पर्यायों का आत्मा स्वयं ही स्वयं को दान देता है, वह क्षायिकदान है। दानांतरायकर्म का क्षय करके उत्पन्न होनेवाली पर्याय है और वह अपने परमस्वभाव के अवलंबन से प्रगट होती है, सादि-अनंतकाल रहने पर भी वह पर्याय है, अत: आदरणीय नहीं है और धर्म का कारण नहीं है।

(६) क्षायिकलाभ:-शुद्धात्मा के आश्रय से आत्मा में आनंद विशेष प्रगट होता है। उस वीतरागी दशा का स्वयं स्वयं को लाभ देना वह क्षायिकलाभ है। वह लाभान्तरायकर्म के नाश से उत्पन्न होता है, सादि-अनंतकाल रहता है। परंतु वह पर्याय है, अत: धर्म के लिये आदरणीय नहीं है।

(७) क्षायिकभोग :- शुद्धात्मा के आश्रय से आनंददशा प्रगट होती है आत्मा उस आनंद को भोगता है। वह क्षायिकभोग भोगांतरायकर्म के नाश से उत्पन्न होता है, सादि-अनंतकाल रहता है। परंतु पर्याय होने के कारण धर्म के लिये आदरणीय नहीं है।

(८) क्षायिकउपभोग :- शुद्धात्मा के आश्रय से वीतरागी सुख विशेष प्रगट होता है उसे आत्मा बार-बार भोगता है। वह क्षायिकउपभोग उपभोगांतरायकर्म के नाश से उत्पन्न होता है, सादि-अनंतकाल रहता है। किंतु पर्याय है; अत: धर्म के लिये आदरणीय नहीं है।

(९) क्षायिकवीर्य :- शुद्धात्मा के आश्रय से परिपूर्ण वीर्यदशा-आत्मबल प्रगट होता है तथा निमित्तरूप से वीर्यान्तरायकर्म का नाश होता है, उसे क्षायिकवीर्य कहते हैं। वह भी पर्याय है, अत: धर्म के लिये आदरणीय नहीं है।

इसप्रकार क्षायिकभावों के भेद बतलाये; किंतु वे सब पर्यायें हैं, साधक जीव को प्रगट नहीं है, इसलिये उनका विचार करने पर राग उत्पन्न होता है; अत: वे धर्म के कारण नहीं हैं।

[शेष अगले अंक में]

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

अब पुद्गलद्रव्य की व्यंजनपर्याय का प्रतिपादन करते हैं। आत्मा ज्ञानस्वरूपी है ऐसा जाना। उसके स्व-परप्रकाशक स्वभाव में जड़पदार्थ जड़ के कारण परिणमित हो रहे हैं। जीव के कारण नहीं। यहाँ अजीव पदार्थ में पुद्गलद्रव्य की व्यंजनपर्याय की बात करते हैं। व्यंजनपर्याय अर्थात् अकेले प्रदेशत्व गुण की पर्याय ऐसा अर्थ यहाँ करना नहीं है। किंतु पुद्गलदव्य में जो विकार तथा आकृति होती है, उस सारे द्रव्य की पर्याय को यहाँ व्यंजनपर्याय कहना है।

सद्धो बंधो सुहुमो, थूलो संठाण भेद तम छाया।
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया॥१६॥

शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, भेद, तम, छाया, उद्योत तथा आतप—इसप्रकार सब पुद्गलद्रव्य की पर्याय है।

अब इस विषय को विस्तार से कहते हैं। आत्मा ज्ञानस्वरूपी है। वह पुद्गल की पर्याय का जाननेवाला है। लेकिन पुद्गल की पर्याय को करनेवाला नहीं है। तथा जीव का अस्तित्व है, इसलिये पुद्गल की पर्याय का अस्तित्व है-इसप्रकार भी नहीं है। पुद्गल की पर्याय का अस्तित्व स्वतंत्र है, आत्मा उसका ज्ञायक है-ऐसी यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान करना वह धर्म है। यहाँ तो राग-द्वेष को भावबंध गिनकर पुद्गलद्रव्य की व्यंजनपर्याय कहेंगे। निर्ग्रंथ दिगंबर मुनिगण प्रत्येक ग्रंथ में विविध पद्धति से द्रव्य का स्वरूप स्पष्ट करते हैं।

(१) जगत में भिन्न-भिन्न जीव दिखते हैं—ऐसे अनंत जीव हैं। ऐसा निर्णय करने से जगत में एक ही जीव है ऐसी मान्यता का निषेध होता है।

(२) जीव कहने से उसके प्रतिपक्षी पुद्गलादि हैं ऐसा निर्णय होता है। इसलिये जगत में पुद्गलादि नहीं है इस मान्यता का निषेध होता है।

(३) जीव का अस्तित्व है, इसलिये पुद्गल की अवस्था होती है, यह मान्यता झूठी ठहरती है।

जड़ की पर्याय भिन्न-भिन्न दिखती है, वह पर्याय स्वयं के द्रव्य में होती है। जीव का उसमें अधिकार नहीं है। जीव जाननेवाला है, ऐसा निर्णय करे तब सम्यग्ज्ञान होता है।

अब अवस्था के दश भेद बतलाते हैं, उसमें पहिले शब्द की बात करते हैं।

(१) शब्दः- दो प्रकार के हैं। (१) भाषात्मक, (२) अभाषात्मक। इसमें भी भाषात्मक में अक्षरात्मक और अनअक्षरात्मक दो भेद हैं।

(अ) अक्षरात्मक भाषा :- संस्कृत, गुजराती, प्राकृत, अंगेजी, हिंदी, अपभ्रंश आदि भाषा आर्य तथा म्लेच्छ मनुष्य के व्यवहार का कारण होने से अक्षरात्मक भेद से अनेक प्रकार की है। चाहे जो भाषा हो लेकिन वह जीव (आत्मा) से नहीं बोली जाती है। भाष पुद्गलों के स्कंध की व्यंजनपर्याय है, वह पुद्गलदव्य के कारण से है, जीव के कारण से नहीं है।

फिर कोई पूछता है कि आत्मा निमित्त है इसलिये (आत्मा से) भाषा बोली जाती है न?

'नहीं', शब्द का अस्तित्व पुद्गलद्रव्य के कारण है, जीव के अस्तित्व के कारण से नहीं है। आत्मा भाषारूप नहीं होता, किंतु एक-दूसरे के समझने में निमित्त मात्र है इसलिये व्यवहार से कहा जाता है।

फिर कोई कहता है कि संसार में भाषा की क्या कमी है? इसलिये अपने को अच्छी भाषा बोलना?

तब इसका समाधान (खुलासा) यह है कि आत्मा भाषा नहीं बोल सकता है—जिससे अच्छी भाषा अथवा बुरी (खराब) भाषा बोलना यह बात नहीं रहती है। यहाँ तो जीव को बोलने में सभ्यता का भाव रखना इतना ही बताना है। पुद्गलद्रव्य जगत के तत्त्व हैं, उनमें भाषावर्गणा में से शब्द होने के योग्य परमाणु शब्दरूप से परिणमित होते हैं।

प्रश्न - तब फिर लकड़ी में से ध्वनि क्यों नहीं निकलती?

समाधान - भाषा का काल (समय) नहीं है, इसलिये परमाणु उसरूप परिणमित नहीं होते हैं। यहाँ भी जीव की इच्छा से भाषा नहीं होती, इच्छा का अस्तित्व जीवद्रव्य में और भाषा का अस्तित्व पुद्गलद्रव्य में है, पुद्गलद्रव्य में से यह पर्याय होती है। जगत में पुद्गलद्रव्य है,

तब उसका वर्तमान परिणमन भी है। उसका परिणमन भाषारूप होनेयोग्य हो तब भाषारूप से होता है।

यहाँ विदेहक्षेत्र में सीमंधर भगवान की 'ॐ' ध्वनि में ऐसा ही आया है। संतों महामुनियों ने भी ऐसा ही कहा है कि तू भाषा के कर्तृत्व का अभिमान उड़ा दे। 'हम ऐसा उपदेश दें तो श्रोता पर असर होता है और धर्म के लिये पैसा (चंदा) इकट्ठा कर सकते हैं'—यह सब अभिमान है। उपदेशरूप भाषा जड़ की है, आत्मा उसका ज्ञाता है, इसप्रकार समझाकर जगत का अभिमान दूर करते हैं।

(ब) अनक्षरात्मक भाषा - दोइंद्रिय, तीनइंद्रिय, चारइंद्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, तिर्यंचों की भाषा को अनक्षरात्मक भाषा कहते हैं। मच्छर अथवा मक्खी भिनभिनाहट करती हैं, वह आवाज पुद्गल की है, मच्छर का जीव है इसलिये वह बोलता है ऐसा नहीं है। यदि जीव की उपस्थिति से बोला जाता हो तो बहुत समय बोलना चाहिये। व्यवस्थित धारावाही बोलने का भाव होने पर भी तोतला (हकला) बुल जाता है। यह बतलाता है कि भाषा स्वतंत्र है, जीव की इच्छा के आधीन नहीं है। बोलना चाहे तब कुछ का कुछ बोला जाता है, ऐसा अनेक बार बनता है। सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान की 'ॐ' ध्वनि अनक्षरात्मक है, वह पुद्गल की अवस्था है। तीर्थंकर का आत्मा उसका कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है।

श्वेतांबर संप्रदाय के एक बड़े आचार्य कहते हैं कि सर्वज्ञ भगवान भी भाषा ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं। लेकिन यह बात मिथ्या है। भाषा परद्रव्य है, आत्मा परद्रव्य को ग्रहण करे और छोड़े यह बात नहीं है। अज्ञानी राग-द्वेष को ग्रहण करता है, ज्ञानी राग-द्वेष को छोड़ता है।

फिर कोई कहते हैं कि गौतमस्वामी आये, इसलिये महावीर की वाणी खिरी, यह भी ठीक नहीं। वाणी खिरने के समय वाणी खिरी है, तीर्थंकर के कारण नहीं, उनके शरीर के कारण नहीं। आत्मा के कारण वाणी खिरी ऐसा माननेवाले अधर्मी हैं।

प्रश्न - इसमें धर्म क्या हुआ?

समाधान - भाषा को भाषा में रहने दे, तू तेरे में रह। पुद्गल की पर्याय पुद्गल में है, तू तेरे से हैं। भाषा पुद्गलद्रव्य की पर्याय है, आत्मा उसका कर्त्ता नहीं है। इसप्रकार जीव और पुद्गल के बीच भेद-ज्ञान करना वह धर्म है।

प्रश्न –आत्मा निमित्त तो है न ?

समाधान – वह भाषा उसके समय में हुई तब निमित्त कही जाती है।

प्रश्न – सर्वज्ञ भगवान से इन्द्र वगैरह पूछते हैं, तब उत्तर मिलता है न ? अज्ञानी पूछता है तब उत्तर क्यों नहीं मिलता ?

समाधान – दिव्यध्वनि तो उसके समय में खिरती है वह पुद्गल की अवस्था है। इंद्रों ने पूछा इसलिये वाणी खिरी, ऐसा नहीं है। वाणी का वाणीरूप से परिणमित होने का स्वभाव है। उसमें इंद्रों के पुण्य का निमित्त है, ऐसा सहज निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। अज्ञानी तो निमित्त-नैमित्तिक के बहाने बड़ा गड़बड़ घोटाला करता है।

अब **अभाषात्मक शब्द** के भेद कहते हैं। वे **प्रायोगिक** तथा **वैसस्त्रिक** दो प्रकार के हैं। उनमें प्रायोगिक **तत, वितत, घन, सुषिर**—चार प्रकार के हैं।

तत—वाणी वगैरह से जो शब्द उत्पन्न होते हैं, उसको तत कहते हैं। वह वाणी का स्वर वीणा के तार से अथवा अंगुलियों से अथवा जीव की इच्छा से नहीं होता है।

प्रश्न – तब फिर दार्शनिक प्रमाण असत्य ठहरता है ?

समाधान – अज्ञानी के सभी प्रमाण असत्य हैं। पुद्गलद्रव्य स्वयं के कारण ततरूप परिणमता है, ऐसा नहीं मानते हुए पर से हुआ मानते हैं, वह भ्रम है। पीलिया के रोगी को सभी वस्तुयें पीली दिखती हैं। वैसे ही अज्ञानी संयोग से मानता है, उसकी बात असत्य है।

वितत – ढ़ोल वगैरह में जो शब्द होते हैं, वह वितत है। वे शब्द ढ़ोल, डंडी (बजाने की लकड़ी), हाथ अथवा आत्मा से भिन्न हैं।

प्रश्न – डंडी नहीं लगे तब आवाज नहीं होती हैं न ?

समाधान – विततरूप परिणमन पुद्गलद्रव्य का है, ऐसी निमित्त-नैमित्तिक अवस्था प्रगटती है, तब डंडी को निमित्त कहते हैं। निमित्त है इसलिये आवाज निकलती है, ऐसा नहीं है।

घन – मजीरा तथा ताल से जो शब्द उत्पन्न होता है, उसे घन कहते हैं। शब्दवर्गणा स्वयं अभाषात्मक घनरूप परिणमती है, मजीरा से नहीं।

सुषिर – बंसी, सीटी, आदि के निमित्त से अभाषात्मक शब्द निकलते हैं उसको सुषिर कहते हैं।

इस अनुसार चार प्रकार के शब्दों में जीव का निमित्त है, इसलिये उसको प्रायोगिक कहते हैं। जीव के प्रयोग से शब्द निकलते हैं। यदि ऐसा हो तो जीव और पुद्गल स्वतंत्र नहीं रहते।

वैसस्त्रिक - स्वाभाविक उत्पन्न होनेवाले शब्दों को वैसस्त्रिक कहते हैं। मेघ-गर्जना का कर्त्ता ईश्वर नहीं, किंतु पुद्गलद्रव्य की वह अवस्था है।

अब विशेष बात बतलाते हैं। आत्मा शब्द से रहित है, ऐसे शुद्ध चैतन्यस्वभाव के श्रद्धा-ज्ञान को भूलता है, उसको कर्म बँधते हैं। स्वयं में सुख नहीं मानने से जो मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ पाँच इंद्रियों के विषयों में आसक्ति करता है वह जीव सुस्वर तथा दुस्वर नाम कर्म का उपार्जन करता है, यानी बाँधता है। वे कर्म सत्ता में से उनके काल में उदय आते हैं।

जीव में शब्द दिखता है, इसलिये व्यवहारनय से जीव के शब्द ऐसा कहा जाता है। निश्चय से शब्द पुद्गलद्रव्य की पर्याय है, वह आत्मा के कारण नहीं है।

प्रश्न - व्यवहार का क्या अर्थ ?

समाधान - शब्द की पर्याय पुद्गल से हुई है, वह निश्चय है और उस समय दूसरी वस्तु की उपस्थिति है, ऐसा ज्ञान करना व्यवहार है। पर से शब्द उत्पन्न होता है इसप्रकार मानने में आये तो निश्चय-व्यवहार एक हो जाते हैं। अज्ञानी को यह बात बैठती नहीं है।

प्रश्न - हम निमित्त हैं तब भाषा उत्पन्न होती है न ?

समाधान - नहीं, भाषा का अस्तित्व भाषा में है, जीव में नहीं, जीव के अस्तित्व के कारण नहीं। भाषा होती है तब दूसरी वस्तु निमित्त कही जाती है। निमित्त ज्ञान करने के लिये ठीक है (सही है), किंतु निमित्त है इसलिये भाषापर्याय होती है, ऐसा नहीं है।

इसप्रकार शब्द के भेद बताकर पर का अहंकार छोड़ने को कहते हैं। शब्द अपने कारण परिणमन करते हैं; और आत्मा ज्ञानस्वरूप है; इसप्रकार भेदज्ञान करना, वह धर्म है।

[क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- स्वयं ही अपना ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता है तो अन्य छह द्रव्य ज्ञेय और स्वयं उनका ज्ञाता है; वह ज्ञेय-ज्ञायक संबंध छोड़ना अशक्य क्यों कहा ?

उत्तर- छह द्रव्य तो ज्ञेय और स्वयं उनका ज्ञाता है। उस ज्ञेय-ज्ञायक के संबंध को छोड़ना अशक्य कहा है सो वहाँ तो निमित्त-नैमित्तिक संबंध बताया है; किंतु यहाँ तो स्व-अस्तित्व में रहनेवाला स्वयं ही ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता है—इसप्रकार निश्चय बतलाकर पर का लक्ष छुड़ाया है।

प्रश्न- क्या ज्ञेय-ज्ञायक संबंधी भ्रम भी जीव को रहता है ?

उत्तर- हाँ-जीव से भिन्न पुद्गलादि छह द्रव्य वह ज्ञेय और आत्मा उनका ज्ञायक-ऐसा निश्चय से नहीं है। अरे! राग वह ज्ञेय और आत्मा उसका ज्ञायक—ऐसा भी नहीं है। परद्रव्यों से लाभ तो है ही नहीं; किंतु परद्रव्य तो ज्ञेय और उनका तू ज्ञाता—ऐसा भी वास्तव में नहीं है। 'मैं जाननेवाला हूँ, मैं ही जानने योग्य हूँ, मैं ही मुझे जानता हूँ, अपने अस्तित्व में जो है वही स्वज्ञेय है।'—इसप्रकार परमार्थका प्रतिपादन करके पर-तरफ का लक्ष छुड़ाया है।

प्रश्न- क्या किसी अपेक्षा ज्ञान भी बंध का कारण हो सकता है ?

उत्तर- शास्त्रज्ञान पुण्यबंध का कारण है, संसार का ज्ञान पापबंध का कारण है, और आत्मज्ञान धर्म का कारण है। शास्त्रज्ञान पुण्यबंध का कारण है, किंतु कौन-सा शास्त्र? सर्वज्ञकथित शास्त्र का ज्ञान पुण्य का कारण है, अन्य के कहे हुए शास्त्रों की तो बात भी नहीं है। शास्त्रज्ञान है, उसमें शास्त्र निमित्त है, वह परलक्षीज्ञान है, इसलिये निषिद्ध है;

आत्मा का ज्ञान वह निश्चय है। उसी भाँति नवतत्त्वों की श्रद्धा में नवतत्त्व निमित्त हैं, आत्मा निमित्त नहीं है। इसलिये वह भेदवाली श्रद्धा राग है, व्यवहार है, और वह व्यवहारश्रद्धा अभव्य को भी होती है, उसे आत्मा की श्रद्धा नहीं है। षट्काय के जीवों की दया का विकल्प है, वह शुभराग है।—ऐसा होने पर भी निश्चयचारित्र नहीं हो, क्योंकि निश्चयचारित्र तो स्व के आश्रय से ही होता है और उसके साथ व्यवहारचारित्र का विकल्प हो भी और न भी हो।

प्रश्न– कहाँ दृष्टि का जोर देने पर सम्यग्दर्शन प्रगट होगा ?

उत्तर– ज्ञायक निष्क्रियतत्त्व के ऊपर दृष्टि डालो न! पर्याय के ऊपर जोर देने से क्या लाभ ? यह मेरी क्षयोपशम की पर्याय बढ़ी, यह मेरी पर्याय हुई—इसप्रकार पर्याय के ऊपर लक्ष देने से क्या काम बनेगा ? पर्याय पलटने पर उस अंश में त्रिकाली वस्तु थोड़े ही आ जाती है ? अरे भाई! त्रिकाली ध्रुवदल जो नित्यानंद प्रभु है, उसके ऊपर दृष्टि का जोर दो न! ज्ञानानंद सागर की तरंगें उछलती हैं उस पर लक्ष डालो न! तरंगों को न देखकर आनंद सागर के दल ऊपर दृष्टि डालो अर्थात् अनादि से क्षणिकपर्याय को ही लक्ष बना रहे हो उसको छोड़ दो और त्रिकाली ध्रुव नित्य ज्ञायक दल के ऊपर दृष्टि को दृढ़ स्थापित करो तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल पर्याय प्रगट होगी।

प्रश्न– अनादिकाल से चली आ रही सबसे बड़ी मूर्खता क्या है ?

उत्तर– जिसका करना अशक्य हो उसके करने की बुद्धि होना मूर्खता है। देहादि के कार्य मैं कर सकता हूँ, हस्त-पादादि को मैं हिला-डुला सकता हूँ, पदद्रव्यों के कार्य को मैं कर सकता हूँ—यह समस्त विचार-शृंखला अबुद्धिमत्तापूर्ण है। मैं परजीवों को सुखी अथवा दु:खी कर सकता हूँ, बचा या मार सकता हूँ, देश-कुटुम्बादि की सेवा कर सकता हूँ—ऐसी बुद्धि होना मूर्खतापूर्ण है। परद्रव्य की कोई भी क्रिया-परिणति उसके अपने ही आधीन है, अन्य द्रव्य के द्वारा उसका किया जाना अशक्य है; तथापि उसके कर्तृत्व की बुद्धि होना मिथ्यात्वभाव की मूर्खता है। तथा जो कार्य अपने द्वारा ही किया जा सकता है-ऐसे अपने स्वरूप की सच्ची श्रद्धा, सच्चा ज्ञान, सच्चा आचरण यह जीव नहीं करता है—यह उसकी दूसरी बड़ी मूर्खता है।

प्रश्न– यह सारा प्रवचन सुनने के बाद स्मरण नहीं रहता, इसके लिये क्या करें ?

उत्तर– यदि किसी व्यक्ति ने अपने को कोई चुभती हुई गाली दी हो तो वह तो याद रहती है न ? तो फिर गुण याद क्यों नहीं रहते ? वास्तविकता तो यह है कि अपने को उनकी सच्ची दरकार नहीं है इसलिये विस्मरण हो जाते हैं; यदि सच्ची दरकार हो तो अवश्य स्मरण रहे ही।

आवश्यकता है – श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर को एक ऐसे विद्वान की जो महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के कार्य का पूरक हो। उनके समस्त कार्य में पूरी तरह सहयोग कर सके और न्याय व अध्यात्म ग्रंथों के पठन-पाठन के साथ-साथ वीतराग विज्ञान परीक्षाबोर्ड के पाठ्यक्रम को अच्छी तरह पढ़ा सके। पूज्य कानजीस्वामी के विचारों से सहमत आध्यात्मिकरुचि संपन्न गंभीर प्रकृति के व्यक्ति को प्राथमिकता दी जावेगी। निवास आदि सुविधाओं के साथ वेतन योग्यतानुसार दिया जावेगा।

— मंत्री, पंडित टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय,
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२००४

पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहरवालों की कक्षाओं का आयोजन

जयपुर :- श्री टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के कार्यक्रमों के अंतर्गत दिनांक १३-४-७९ से २७-४-७९ तक पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहर वालों के प्रवचनों तथा कक्षाओं का आयोजन प्रातः, दोपहर और सायंकाल टोडरमल स्मारक भवन में किया गया है। बाहर से पधारनेवाले महानुभावों के लिये निःशुल्क आवास व सशुल्क भोजन की व्यवस्था है। स्थानीय लोगों के लिये भी यथासंभव उक्त व्यवस्था की जायेगी।

— मंत्री

समाचार दर्शन

राजकोट (गुज०) :- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी १४-३-७९ से २८-३-७९ तक विराजे। उनके प्रवचन सुसज्जित विशाल पंडाल में प्रतिदिन ८.०० से ९.०० तक व दोपहर में ३ से ४ तक होते थे। रात्रि को ७ से ८ तक चर्चा जिनमंदिर में चलती थी। समयसार की १७, १८, १९ तथा १००वीं गाथा एवं कलशटीका के अनेक गंभीर कलशों पर तथा पंचास्तिकाय गाथा १०३ पर आपके प्रवचन हुए। रात्रिचर्चा में सूक्ष्मतम विषय प्रश्नोत्तर के रूप में चलते थे। दिनांक २४-३-७९ से २८-३-७९ तक के लिये जयपुर से डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल भी पधारे थे। उनके प्रवचन प्रतिदिन पंडाल में रात्रि ८ से ९ तक क्रमबद्धपर्याय पर होते थे। उनके गंभीर पर सरल-सरस प्रवचनों की भी खूब सराहना हुई। उक्त अवसर पर साहित्य की आधी कीमत कर दी गई थी। हजारों रुपये का साहित्य बिका।

राजकोट से गुरुदेव मोरबी पधार गये। उसके बाद जामनगर, बांकानेर और बम्बई जावेंगे। वहाँ हुई धर्मप्रभावना के समाचार अगले अंक में दिये जावेंगे।

सोनगढ़ :- यहाँ होनेवाला वर्षाकालीन प्रौढ़ शिक्षण व प्रवचनकार प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष दिनांक २१-७-७९ से ९-८-७९ तक संपन्न होगा। तत्संबंधी विस्तृत जानकारी यथासमय दी जावेगी।

श्री कुंदकुंद कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट को शिखरजी में भारी योगदान

अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर शाश्वत तीर्थधाम पर श्री कुंदकुंद कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट को ३०,४१० रुपये की नवीन दान की घोषणाएँ इसप्रकार की गईं:—

२०,०००.००	श्री पूनमचंद शांतिलाल पाटनी, रतलाम
२,५०१.००	श्री बसंतीलाल माणेकचंद, जावरा
२,००२.००	श्रीमती रूपवती 'किरण', जबलपुर
१,००१.००	श्री जवेरीलाल पन्नालाल सरैया, दाहोद
१,००१.००	श्री दरबारीलाल जैन, छिंदवाड़ा
१,१०१.००	श्री मुरलीधरजी सेठी, झूमरीतलैया
१,१०१.००	श्री चिमनलाल हीरालाल अजमेरा, झूमरीतलैया

१,१०१.०० श्री प्रभुदयाल शांतिलाल छाबड़ा, झूमतरीतलैया

५०१.०० श्री प्रभुलालजी बाबरिया, बनियानी

१०१.०० श्रीमती ताराबैन गेंदालाल तलाटी, दाहोद

इसी अवसर पर पुरानी घोषित राशियों में से अड़तीस हजार की राशि नगद प्राप्त हुई।

— पंडित ज्ञानचंद जैन

कार्यक्रम जो संपन्न हुए

सम्मेदशिखरजी में अभूतपूर्व धर्मप्रभावना

शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखरजी सिद्धक्षेत्र की तेरापंथी कोठी में अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर ६ मार्च से १३ मार्च तक कमेटी द्वारा आध्यात्मिक प्रवचनों का अभूतपूर्व आयोजन किया गया।

श्री महावीर कुंदकुंद प्रवचन मंडप में प्रतिदिन तीन बार होनेवाले प्रवचनों में विद्वद्वर्य पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल व पंडित ज्ञानचंदजी के प्रवचन विशेष आकर्षण के केन्द्र रहे तथा पंडित कन्नुभाई दाहोदवालों की भक्ति एवं पंडित प्रकाशचंदजी हितैषी द्वारा जयमाला का अर्थ, पंडित रमेशकुमारजी जयपुरवालों की बालक-कक्षा को विशेष सराहा गया एवं सभी ने उनकी प्रशंसा की। प्रवचन और कक्षाओं में पंडित उग्रसेनजी बंडी उदयपुर, पंडित चंदूभाई फतेपुर, पंडित मणिलालजी मुनाई व पंडित सुशीलकुमारजी राघौगढ़ का भरपूर सहयोग मिला। प्रवचन, पूजन, विधान, जिनेन्द्रभक्ति व बाल-कक्षाओं के कार्यक्रम प्रातः ५ बजे से रात्रि ९.३० पर्यंत चलते थे। ब्रह्मचारी प्रद्युम्नकुमारजी का भी प्रवचन हुआ एवं वे प्रत्येक कार्यक्रम में उपस्थित रहे।

विशेष में डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के क्रमबद्धपर्याय और अहिंसा विषय पर प्रवचन हुये एवं पंडित बाबूभाई मेहता द्वारा श्री कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की प्रगति पर प्रकाश डाला गया। जिससे प्रभावित होकर अनेक भाईयों ने ट्रस्ट को दान दिया। इस अवसर पर सात हजार रुपये का साहित्य बिका एवं 'आत्मधर्म' के २५ आजीवन तथा अनेक वार्षिक ग्राहक बने। 'जैनपथ प्रदर्शक' व 'सन्मति संदेश' के भी अनेक ग्राहक बने।

दिनांक ११ मार्च को सभी विद्वानों के साथ शाश्वत तीर्थधाम की यात्रा अनेक भाई-बहिनों ने की। जिससे सामूहिक पूजन एवं भक्ति का भी लाभ मिला। बाहर से आनेवाले

लगभग ५००० से भी अधिक यात्रियों ने लाभ लिया। कार्यक्रम से प्रभावित होकर आये हुए समाज ने कमेटी से अनुरोध किया कि हर वर्ष इसीप्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए।

अंत में कमेटी के अध्यक्ष रायबहादुर श्री हरकचंदजी पाण्ड्या, रांची ने विद्वानों का आभार माना और भविष्य में भी ऐसा लाभ इस क्षेत्र को मिलता रहे ऐसा आग्रह किया।

— ज्ञानचंद गोधा, मंत्री

मक्सीजी का वार्षिक मेला संपन्न

दिनांक १७ एवं १८ मार्च १९७९ को यहाँ का दो-दिवसीय वार्षिक मेला विविध कार्यक्रमों के साथ सानंद संपन्न हुआ। दोनों दिन पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित जवाहरलालजी विदिशा, पंडित चंदूभाई फतेपुर तथा पंडित मणीभाई मुनाई के आध्यात्मिक प्रवचनों की अमृतवर्षा होती रहीं। १७ मार्च को महिला सम्मेलन आयोजित किया गया। इस अवसर पर विभिन्न सांस्कृतिक कार्यकम भी आयोजित किये गये। क्षेत्र को श्री कुंदकुंद कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट, बम्बई की ओर से ५० हजार रुपये की आर्थिक सहायता देने की घोषणा पंडित बाबूभाईजी ने की। मेले में लगभग २००० धर्म बंधुओं ने भाग लेकर धर्म लाभ लिया।

—प्रकाश झांझरी

मेहसाना (गुज०) :- राजकोट से वापिस लौटते हुए डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल दो घंटे यहाँ रुके। आपका मोक्षमार्गप्रकाशक पर एक प्रवचन स्थानीय दिगंबर जैन मंदिर में हुआ।

जलगाँव (महा०) :- २८ फरवरी ७९ को स्थानीय महावीर दिगंबर जैन मंदिर में भगवान आदिनाथ की नवीन मूर्ति की वेदी स्थापना विधि पंडित कमलापतिजी शास्त्री द्वारा संपन्न करायी गयी। धर्म प्रभावना अच्छी हुई।

शाहगढ़ (म०प्र०) :- अष्टाह्निका पर्व पर श्री सिद्धचक्र मंडल विधान का आयोजन किया गया। पूजन-विधान तथा भक्ति के कार्यक्रमों के अतिरिक्त ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठा के तात्त्विक प्रवचनों का आयोजन किया गया। अनेक भाईयों ने नियमित स्वाध्याय का नियम लिया।

— कोमलचंद जैन

श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय में विद्वत-स्वागतसमारोह एवं डॉ० दरबारीलालजी कोठिया द्वारा विशेष अध्यापन

जयपुर :- राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा 'जैनदर्शन में व्याप्ति' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में समागत विद्वानों का स्वागत टोडरमल महाविद्यालय में २५ मार्च, १९७९ को किया गया। इस अवसर पर डॉ० दरबारीलालजी कोठिया वाराणसी, डॉ० दयानंदजी भार्गव जोधपुर, डॉ० प्रेमसुमनजी उदयपुर, डॉ० फूलचंदजी प्रेमी लाडनूं, डॉ०पद्मनाभजी केलीफोर्निया, डॉ० एन० टांटियाँ लाडनूं, डॉ० रामचंद्रजी द्विवेदी संस्कृत विभागाध्यक्ष जयपुर आदि अनेक विद्वान पधारे थे। मंगलाचरणोपरांत सभी विद्वानों का स्वागत एवं उन्हें सत्साहित्य भेंट किया गया। श्री नेमीचंदजी पाटनी ने टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एवं महाविद्यालय की गतिविधियों का परिचय दिया। डॉ० दयानंदजी भार्गव, डॉ० रामचंद्रजी द्विवेदी, डॉ० प्रेमसुमनजी एवं डॉ० कोठियाजी ने छात्रों को संबोधित करते हुए उनकी आध्यात्मिक रुचि एवं न्याय तथा सैद्धांतिक अध्ययन की जिज्ञासा की प्रशंसा करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की तथा मंगल आशीर्वाद प्रदान किया।

डॉ० कोठिया साहब ७ दिन तक स्मारक में ठहरे एवं छात्रों को न्यायदीपिका का अध्ययन कराया। छात्रों ने उनसे अध्यापन के लिये पुनः पधारने का अनुरोध किया, जिसे उन्होंने स्वीकार किया। छात्रों के निरंतर संपर्क से डॉ० साहब अत्यंत प्रभावित हुए तथा विद्यालय के सम्मति पत्रक में निम्नानुसार सम्मति व्यक्त की:—

''मैं श्री टोडरमल स्मारक भवन में २४ मार्च से ३० मार्च तक रहा। यहाँ की प्रवृत्तियों को निकट से देखने का मेरा पहला अवसर था। छात्रों में सेवा, विनम्रता और आदरभाव के अतिरिक्त सैद्धांतिक और न्यायशास्त्रीयज्ञान की भूख अधिक देखी। जितनी रुचि और अधिक तत्परता से छात्र अध्यात्म का अध्ययन करते हैं, उतनी ही रुचि तथा तत्परता से जैन-न्याय और व्याकरण का भी अभ्यास करते हैं..... सभी छात्र व्युत्पन्न और वस्तु को पकड़ने की उत्सुकता से संपन्न हैं। मुझे यह कहने में संदेह नहीं कि इस विद्यालय के छात्र निश्चय ही अच्छे विद्वान, समाजसेवी और धर्मप्रचारक बनेंगे। भवन की विभिन्न प्रवृत्तियों के उत्कर्ष में डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, श्री नेमीचंदजी पाटनी और उनके सभी एकनिष्ठ सहायकों का प्रयास है। मैं भवन की प्रवृत्तियों के और उत्कृर्ष की अभ्युन्नति चाहता हूँ।''

अन्य विद्वानों ने भी इसी आशय की सम्मतियाँ व्यक्त कीं। — **जतीशचंद जैन**

आवश्यक सूचना

प्रमुख अफ्रीकी देश केनिया की राजधानी नैरोबी में १५ लाख रुपये की लागत से एक दिगम्बर जिनमंदिर बनकर तैयार हुआ है। उसकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा जनवरी, १९८० के तृतीय सप्ताह में होना निश्चित हुआ है, जिसमें आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी भी पधारेंगे। साथ में पूज्य बेनश्रीबेन, विद्वद्वर्य लालचंदभाई, बाबूभाई तथा डॉ० हुकमचंद भारिल्ल आदि अनेक गणमान्य विद्वान व श्रीमान् भी पधारेंगे।

उक्त अवसर पर हजारों भाई-बहनों की इच्छा वहाँ जाने की है, पर वहाँ सीमित लोग ही जा सकेंगे। वैसे वहाँ का हवाईजहाज का किराया ६,५९० रुपये है, परंतु कन्सेशन का प्रयत्न करने पर लगभग ४,००० रुपये में आना-जाना हो जायेगा। जो भाई वहाँ जाना चाहते हों वे अपना पासपोर्ट बनवाने की शीघ्र व्यवस्था करें तथा इसकी जानकारी तत्काल निम्नलिखित पते पर दें जिससे उनके टिकट का रिजर्वेशन एवं कन्सेशन की व्यवस्था कराई जा सके :—

श्री बलुभाई शाह,

द्वारा श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल, १७३/ १७५, मुम्बादेवी रोड, बम्बई-२

पासपोर्ट बनवाने के लिये आवश्यक जानकारी

(१) जानेवाले का पूरा नाम

(२) जन्मस्थान, जन्म दिनांक, समय, स्कूल या ग्राम पंचायत का प्रमाण-पत्र (६ प्रतियों में संलग्न करें)

(३) पूरा पता (ग्राम, तहसील, जिला एवं प्रांत सहित)

(४) व्यवसाय

(५) शिक्षा उम्र

(६) ऊँचाई

(७) आँखों का कलर

(८) बाल का रंग और माथे का कलर

(९) मुँह के ऊपर कोई निशान, दाग मसा, तिल आदि यदि हो तो उल्लेख करें

(१०) पिता का नाम

(११) पिता के पिता का नाम जन्म स्थान

(१२) माता का नाम माता के पिता का नाम उम्र

(१३) दो पहिचान वाले व्यक्तियों के नाम तथा पूरे पते

नोट— पासपोर्ट एजेंट से पासपोर्ट बनवाने में लगभग १०० रुपये का खर्च आता है, परंतु विधायक के हस्ताक्षर से कार्य होने में सुविधा रहेगी।

उज्जैन (म०प्र०) :- १ मार्च १९७९ को पंडित बाबूभाई मेहता पधारे। दो दिन तक 'परमात्मप्रकाश' ग्रंथ पर आपके सारगर्भित प्रवचन हुए, जिससे अनेक लोगों में व्याप्त भ्रांतियों का निराकरण हुआ। दिनांक ६ मार्च से १३ मार्चतक श्री सिद्धचक्र मंडल विधान का अष्ट दिवसीय कार्यक्रम स्थानीय क्षीरसागर मंदिर में निर्विघ्न संपन्न हुआ। इस अवसर पर अनेक प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं तथा १४ मार्च को भव्य शोभायात्रा निकाली गई। कार्यक्रम पंडित विमलचंदजी झांझरी तथा श्री लालचंदजी जैन 'अभय' के सान्निध्य में संपन्न हुआ।

— सुबोध सिंघई, प्र० स०, जैन युवा फैडरेशन

रतलाम (म०प्र०) :- महावीर जयंती के अवसर पर संपूर्ण जैन समाज के विशेष आग्रह पर प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल १० अप्रेल को यहाँ पहुँच रहे हैं। विस्तृत समाचार अगले अंक में प्रकाशित किये जायेंगे। **— अखिल बंसल**

मदनगंज-किशनगढ़ (राज०) :- यहाँ दिनांक २५-५-७९ से ३१-५-७९ तक विशाल गजरथ एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया जा रहा है।

— मूलचंद लुहाड़िया

झालावाड़ (राज०) :- दिनांक २२ मार्च ७९ को पंडित प्रदीपकुमार झांझरी, उज्जैन तीन दिवस के लिये यहाँ पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से स्थानीय समाज लाभान्वित हुई। दिनांक २७ मार्च को युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा के सर्वसम्मति से चुनाव हुए। फैडरेशन के सभी सदस्यों ने नियमित देवदर्शन करने की प्रतिज्ञा ली। **—महेन्द्र सेठी**

लवाण (राज०) :- दिनांक १२ से १४ मार्च ७९ तक टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र पंडित अभयकुमारजी के मोक्षमार्गप्रकाशक पर सरल भाषा में मार्मिक प्रवचन हुए तथा पंडित प्रेमचंदजी ने बालबोध पाठमाला की कक्षाऐं लीं। समाज में अच्छी प्रभावना हुई। **—गोकुलचंद जैन**

पाठकों के पत्र

अशोकनगर (म०प्र०) से श्री लालाराम साहू 'मधुप' लिखते हैं: —

आत्मधर्म अध्यात्म की एकमात्र गीता है, जिसका हर अंक एक नया ही अध्याय लिये रहता है और अपने चैतन्य में डुबकी लगाने की हिम्मत देता है। संत शिरोमणि कानजीस्वामी की दिव्य-वाणी का सुस्वादु नवनीत बड़ा ही प्राणदायी है। मैं कृत्यकृत्य हूँ।

बड़वाहा (म०प्र०) से श्री प्रवीणकुमारजी जैन लिखते हैं: —

आत्मधर्म के लेख सरल, सुबोध और सुंदर दृष्टांत सहित आते हैं। इसे पढ़ने से हमारे जीवन में नया मोड़ आ गया है। हमारी रुचि राग को छोड़कर वीतरागता में लग गयी है। इसे जब भी पढ़ते हैं नया मालूम होता है।

जयपुर (राज०) से श्री महावीरजी फागीवाले लिखते हैं: —

आत्मधर्म पत्रिका का मैं नियमित पाठक हूँ। इससे पाठकों को जीवन में सच्चा मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

महेश्वर (म०प्र०) से श्री जयंत जैन लिखते हैं: —

आत्मधर्म जब से हाथ में आने लगा है, मैं उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। इसमें आत्मा को समझने योग्य बहुत सी बातें पढ़ने को मिलीं। इसको पढ़कर आत्मविभोर हो उठा।

उदयपुर (राज०) से श्री माणक बंधु लिखते हैं: —

आत्मधर्म नियमित रूप से प्राप्त हो रहा है। अनेक श्रावक-श्राविका इसके वाचन से लाभ ले रहे हैं। इसके माध्यम से जो आप मानवसेवा का पुण्य कार्य कर रहे हैं, वह प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है।

रीवा (म०प्र०) से श्री के० एल० जैन, व्याख्याता लिखते हैं: —

आत्मधर्म का बहुत इंतजार रहता है। इसको पढ़कर ऐसा लगता है मानो गागर में सागर समाया हुआ हो।

शोलापुर (महा०) से पंडित अनंतराजजी तूपकर न्यायतीर्थ, एम०ए० लिखते हैं: —

आत्मधर्म का संपादकीय खास चिंतनीय निकलने लगा है।

घुराटा (म०प्र०) से श्री सेठ भागचंदजी जैन लिखते हैं: —

आत्मधर्म वह आध्यात्मिक पत्रिका है जिसमें सरल भाषा में लिखित प्रवचनों, संपादकीय और ज्ञानगोष्ठी द्वारा आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त हो रहा है।

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें: —

(१) जिन बंधुओं की आत्मधर्म की सदस्यता-शुल्क जून माह में समाप्त हो रही है, उन ग्राहकों को क्रमश: अप्रेल, मई तथा जून के अंक के साथ मनिआर्डर फार्म भेजे जा रहे हैं।

(२) जुलाई के अंक में एक कूपन छपेगा। उसके आधार पर ही भेंट की पुस्तक प्राप्त होगी। जुलाई का अंक उन्हें ही भेजा जाएगा, जिनका वार्षिक शुल्क ३० जून तक कार्यालय को प्राप्त हो जावेगा।

(३) अत: यदि आप चाहते हैं कि नवीन भेंट में मिलने वाली ४) रुपये की पुस्तक आपको भी मिले तो मनिआर्डर प्राप्त होते ही, उसे भरकर अपना शुल्क तत्काल भेद दें।

चांदखेड़ी का वार्षिक मेला एवं अ० भा० जैन युवा फैडरेशन का अधिवेशन संपन्न

चांदखेड़ी (राज०) :- प्रतिवर्षानुसार इस वर्ष भी श्री दिगंबर जैन अतिशय क्षेत्र चांदखेड़ी का वार्षिक मेला दिनांक २०, २१ एवं २२ मार्च को असामाजिक तत्त्वों द्वारा अनेक विघ्न-बाधाऐं उपस्थित करने के बावजूद विशाल आयोजन के साथ सानंद संपन्न हुआ। दिनांक २० एवं २१ को पंडित बाबूभाई मेहता एवं पंडित ज्ञानचंदजी के सारगर्भित प्रवचन हुए। उपद्रवी लोगों द्वारा वातावरण अशांत कर दिये जाने से क्षेत्र कमेटी के चुनाव नहीं हो सके। चुनाव अधिकारी ने चुनाव स्थगित कर दिये। उपद्रवी तत्त्वों ने एक नई कमेटी बनाई जिसे जिलाधीश महोदय ने अवैध घोषित कर दिया तथा पुरानी कमेटी को ही कार्यरत रहने को कहा।

दिनांक २१ मार्च को अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का द्वितीय वार्षिक अधिवेशन अनेक उपलब्धियों के साथ संपन्न हुआ। देश के कोने-कोने से लगभग १००० युवक-युवतियाँ अधिवेशन में भाग लेने पधारे थे। प्रात: पंडित जवाहरलालजी विदिशा द्वारा झंडारोहण किया गया। रात्रि को ६.०० से श्री मोतीलालजी शाह खंडवा वालों की अध्यक्षता में खुला अधिवेशन हुआ जिसमें लगभग ८००० का जनसमुदाय उपस्थित था। समारोह के मुख्य अतिथि पंडित बाबूभाई मेहता थे। अन्य प्रमुख वक्ताओं में श्री युगलजी कोटा एवं पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा थे। अधिवेशन में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये तथा फैडरेशन के ८ प्रमुख कार्यकर्ताओं को सम्मानित किया गया। फैडरेशन के अध्यक्ष पंडित जतीशचंदजी शास्त्री सनावद तथा महामंत्री अखिल बंसल जयपुर चुने गये। ज्ञातव्य है कि क्षेत्र पर शांतिपूर्ण व्यवस्था बनाये रखने में युवा फैडरेशन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

— परमात्मप्रकाश भारिल्ल

पधारिए! पधारिए!! अवश्य पधारिए!!!

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित

तेरहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर अजमेर में

महोदय,

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित तेरहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष अजमेर (राजस्थान) में दिनांक ३ जून से २२ जून, १९७९ तक होना निश्चित हुआ है। उक्त अवसर पर धार्मिक अध्ययन करानेवाले अध्यापक बंधुओं को एवं मुमुक्षु भाइयों को शिक्षण-विधि में प्रशिक्षित किया जायेगा।

उक्त शिविर में विद्वद्वर्य पंडित खीमचंदभाई सोनगढ़, पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, पंडित रतनचंदजी शास्त्री विदिशा, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा के पधारने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। श्री युगलजी कोटा के पधारने की भी पूरी संभावना है। इनके अतिरिक्त शिक्षण-प्रशिक्षण में सहयोग देनेवाले अनेक प्रशिक्षित अध्यापक भी पधारेंगे।

उक्त अवसर पर समागत विद्वानों के प्रवचनों का लाभ तो प्राप्त होगा ही; साथ में बालकों, प्रौढ़ों और महिलाओं के लिये शिक्षण-कक्षाओं की भी व्यवस्था रहेगी।

धार्मिक शिक्षण-संस्थाओं के अधिकारियों एवं प्रधानाध्यापकों से अनुरोध है कि वे अपने अध्यापक बंधुओं को इस शिविर में अवश्य शामिल करें एवं स्वयं भी पधारें। अध्यापक महोदयों से भी निवेदन है कि वे स्वयं अधिक से अधिक साथियों सहित प्रशिक्षण में अवश्य ही सम्मिलित हों।

समागत बंधुओं के ठहरने एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था रहेगी।

प्रशिक्षण कक्षाओं में सम्मिलित होनेवाले बंधुओं से आग्रह है कि वे निम्नलिखित **प्रवेश-प्रतिबंधों** पर विशेष ध्यान दें:—

बालबोध-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिये बालबोध पाठमाला भाग १, २, ३ की तथा प्रवेशिका-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिये वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३ की प्रवेश-प्रतियोगितात्मक लिखित परीक्षा दिनांक २ जून को दोपहर बाद अजमेर में ली जावेगी, जिसमें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णता प्राप्त करना आवश्यक होगा। अत: प्रवेशार्थी उक्त पुस्तकों की पूरी-पूरी तैयारी करके आवें। जो व्यक्ति उक्त पुस्तकें पहले ही उत्तीर्ण कर चुके हैं, उन्हें यह परीक्षा देना आवश्यक नहीं है। ध्यान रहे प्रवेशिका-प्रशिक्षण में उन्हें ही प्रवेश किया जायेगा जो बालबोध-प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हों।

आपके यहाँ से कितने व कौन-कौन भाई-बहिन शिविर में पधार रहे हैं, इसकी सूचना हमारे जयपुर कार्यालय को तथा अजमेर २० मई, १९७९ तक अवश्य भेज देवें ताकि उनके ठहरने एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था की जा सके। आगंतुक महानुभाव दौलतबाग स्थित सेठजी की कोठी में पधारने का कष्ट करें।

अजमेर पत्र-व्यवहार का पता:—
मंत्री, श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल
बड़ा रंगमहल, अजमेर-३०५००१ (राजस्थान)

हुकमचंद भारिल्ल
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२००४

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
'' '' (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४